२५८

सन्तान-सुधार का उपाय

सम्पादक और प्रकाशक:—

बालचन्द श्रीश्रीमाल

रतलाम (मध्यभारत)

मुद्रक—

श्री जैनोदय प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम

प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य चार आना | वि स २००८ वीर स २४७८

सम्पादक का वक्तव्य

संसार में सन्तान जैसा आकर्षक एवं मोहक पदार्थ दूसरा नहीं है। सन्तानरहित को संसार शून्य सा दिखलाई देता है। जिस घर में सन्तान नहीं वह घर ही श्मशानतुल्य माना जाता है और उस घर में रहने वाले मनुष्य सदा चिन्तित रहा करते हैं। यह बात दूसरी है कि कोई ज्ञानी अपने ज्ञानबल से चिन्ता को दबाकर सतोषयुक्त रहता है।

सन्तान का इतना महत्व होते हुए भी यदि वह सन्मार्ग त्याग कर कुमार्गगामी हो जाय या मूर्ख रह जाय तो महान् परिताप का कारणभूत बन जाता है। अतः सन्तान को शिक्षित, विनयी और सदाचारी बनाना माता पिता का प्रथम कर्त्तव्य है। नीतिकार भी कहते हैं कि "सत्कुले योजयेत् कन्या, पुत्र विद्यासु योजयेत्" अर्थात्—कन्या को शिक्षित बना कर श्रेष्ठ कुल में जोड़ना चाहिए और पुत्र को विद्या कला की शिक्षा में जोड़ना चाहिए। परन्तु लाड़ प्यार में उसका जीवन नहीं बिगाड़ना चाहिए। यही माता पिता का कर्त्तव्य है।

इस पुस्तक में उन्हीं बातों का उल्लेख है जिन पर ध्यान दिया जाय तो सन्तान को विद्वान्, सुदान्त एवं सचरित्र बना सकते हैं। यदि इस निबन्ध से बालकों का जीवन सुधारने की प्रेरणा मिल सके तो मैं अपना प्रयास सफल मानूँगा।

यहाँ इतना मैं स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि यह निबन्ध मैंने स्वतन्त्र नहीं लिखा है परन्तु एक गुजराती लेख का संशोधन एवं परिवर्द्धन के साथ हिन्दी अनुवाद किया है अतः मूल लेखक के प्रति कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रहता।

यह पुस्तक बालोपयोगी एवं जनोपयोगी होने से अधिक प्रचार हो इसलिये मूल्य जितना कम हो उतना ही जनता को लाभप्रद बनता है किन्तु वर्तमान महगाई को लक्ष्य में लेते हुए यह मूल्य अधिक प्रतीत नहीं होगा। इत्यलम्

रतलाम (*मध्य भारत*) —सम्पादक

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा, स० २००८
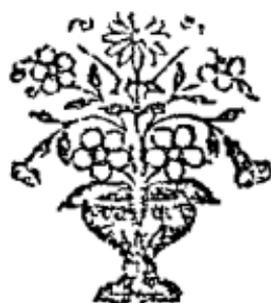
अनुक्रमणिका

क्रमाक	विषय	पृष्ठाक
१	राज्य कचहरी	१
२	न्याय की मांग	४
३	योग्यता की परीक्षा	८
४	संस्कारों का असर	१३
५	शका-समाधान एव वार्तालाप	१५
६	सगति का असर	२०
७	पुनः धर्मभावना	२५
८	पश्चात्ताप और हृदय-परिवर्तन	३०
९	उपसहार	३३

सन्तान-सुधार का उपाय

प्रकरण १ ला

स्थान-राज्यकचहरी
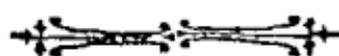
धवलपुर के प्रतापी महाराजा प्रतापसिंहजी के दरबार-हॉल में पधारते ही वहा उपस्थित सब दरबारी लोग खडे हो गये और राजा को अभिवादन करते हुए उन्होंने भक्तिपूर्वक उनका स्वागत किया। महाराजा अपने सिंहासन पर विराजमान हुए। महाराजा के सिंहासनारूढ़ हो जाने पर भी राज-सभा में एकदम सन्नाटा छाया हुआ है। स्वय महाराजा के चहरे पर भी गहरी शोक की छाया व्याप्त हो रही है। इसी तरह दरबारी लोग, अधिकारी वर्ग एव प्रजावर्ग के लोग भी शोकाकुल बने हुए हैं।

तीन दिन तक शहर में हड़ताल रखने एवं राज सभा कचहरियों आदि बन्द रखने पर भी राजा तथा प्रजा के हृदय से शोक की छाया दूर नहीं हुई। इसका कारण यह है कि चार दिन पूर्व यहां के नगर सेठ श्री लक्ष्मीचन्दजी का स्वर्गवास हो गया था। नगर सेठ बड़े ही दयालु उदारचित्त, धीर, वीर एवं गम्भीर थे। वे धर्म-धुरन्धर थे। अधिक क्या कहें, वे धर्म की मूर्ति ही थे। इसी तरह राज्य एवं प्रजा के हितैषी थे। उभय पक्ष को उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि से अपनी तरफ आकर्षित कर लिया था। राज्य-कार्य हो तो वह प्रजा को समझा कर उनके द्वारा सम्पादन करा देते थे और प्रजा का कोई दुख-दर्द या आवश्यकता होती वह राजा या राज्याधिकारियों को अर्ज करके उनकी पूर्ति कराते तथा दुख दूर करा देते थे। इस तरह उभय पक्ष में सुख शांति एवं पारस्परिक घनिष्ट मैत्री की वृद्धि करते थे। इससे राजा तथा प्रजा का उक्त नगर सेठ के प्रति अत्यधिक आदरभाव एवं सम्मान था। नगर सेठ की मृत्यु सभी को अखरती थी किन्तु इस कराल काल के आगे किसी का वश नहीं था। सभी निरुपाय थे। भर्तृहरिजी अपने वैराग्य शतक में कहते हैं—

पत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनुबहवस्तत्र चान्त्येन चैकः।

इत्थञ्चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वाविवाचौ
काल: काल्या सह बहुकुल: क्रीडति प्राणिसारै:॥

भावार्थ–जहा अनेक मनुष्य थे वहा आज एक ही दिखाई दे रहा है और जहा एक था वहा अनेक होकर अन्त में एक ही रह जाता है इस प्रकार रात-दिन रूपी पासे फेंककर कराल काल काली के साथ प्राणियों को सार बनाकर क्रीडा करता रहता है ।

जब कोई अनहोनी घटना घट जाती है तब उस दुर्घटना के प्रति सभी को दुख एव शोक होता है परन्तु प्रकृति का यह स्वभाव है कि ज्यों २ समय बीतता जाता है, शोक की रेखाएँ कम होती जाती हैं और दुनिया का सभी कारोबार एव व्यवहार पूर्ववत् चलना प्रारम्भ हो जाता है तदनुसार यहा भी ऐसा ही हुआ। राज्य एव प्रजा के कार्य पूर्ववत् प्रारम्भ हो गये ।

प्रकरण २ रा

न्याय की माग
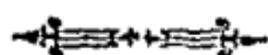
कुछ समय पश्चात् एक समय महाराजा एवं प्रधानजी के बीच में नगर सेठ के सम्बन्ध की बातचीत चल रही थी और नगर सेठ के रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये विचार-विनिमय हो रहा था। इतने में प्रतिहारी (दरबान) ने आकर महाराजा से प्रार्थना की कि स्वर्गीय सेठ लक्ष्मीचन्दजी के तीनों पुत्र महाराजा साहब को कुछ अर्ज करने के लिये उपस्थित हुए हैं और सेवा में हाजिर होने की आज्ञा चाहते हैं। क्या हुक्म होता है?

महाराजा ने सम्मान सहित उनको ले आने का आदेश दिया। प्रतिहारी उन तीनों कुमारों को सम्मान सहित दरबार हॉल में ले आया। तीनों बन्धुओं ने महाराजा को अभिवादन किया। महाराजा ने उनको योग्यासन पर बिठा कर प्रथम तो नगर सेठ के अवसान से राज एवं प्रजा के लिये जो असह्य खामी पड़ी उस बाबत जिक्र करके सान्त्वना देते हुए धैर्य बन्धाया पश्चात् पूछा कि मेरे योग्य कार्य हो सो कहो। नगरसेठ का बड़ा पुत्र सुन्दरकुमार उठ

कर अर्ज करने लगा कि हमारे पिता श्री बहुत ही चतुर, बुद्धिमान एवं धर्मप्रेमी थे। हम तीनों बन्धुओं पर समान भाव से वात्सल्य रखते थे। वे अपनी सम्पत्ति का वसीयतनामा कर गये है जो मेरे पास विद्यमान है (वसीयतनामा महाराजा के सामने धर कर) इसके अनुसार हमारे हिस्से की सम्पत्ति हमें यथायोग्य वितरण कर दीजिये। यही हमारी नम्र प्रार्थना है।

महाराजा ने वसीयतनामा हाथ में लेकर देखा तो उसमें सम्पत्ति की विगत देकर आगे लिखा था कि—

"उपरोक्त मेरी सम्पत्ति में से एक चतुर्थांश (पाव हिस्से का) भाग मेरी धर्मपत्नी विद्यादेवी को देकर शेष तीन चतुर्थांश मेरे तीनों पुत्रों में से दो पुत्र बराबर भाग करके ले लेवें एक पुत्र को कुछ भी देना नहीं"।

वसीयतनामे में सेठानी को पाव हिस्से की सम्पत्ति देते हुए पौन हिस्से की सम्पत्ति कौनसे दो पुत्रों को देना और किसको नहीं इसका नाम निर्देश कुछ भी नहीं किया था इससे किस २ को देना और किसको नहीं यह समझना महाराजा के लिये भी कठिन समस्या बन गयी।

महाराजा सा० बहुत विचार करते हुए भी जब कोई समस्या हल नहीं कर सके तब उन्होंने यह वसीयतनामा

प्रकरण ३ रा

योग्यता की परीक्षा
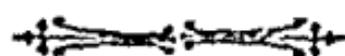
दूसरे दिन नगरसेठ के तीनों पुत्र राजसभा में आये। महाराजा एवं प्रधानजी को यथायोग्य अभिवादन करने के पश्चात् प्रधानजी ने तीनों भ्राताओं को पृथक २ तीन कमरों में बैठाये और अपने आवश्यक कार्यों से निवृत्ति लेकर नगरसेठ का बड़ा पुत्र सुन्दरकुमार जिस कमरे में बैठा था वहा जाकर कहने लगे—देखिये कुँवर साहब,मैने आपके हित के खातिर ऐसा विचार किया है कि आप जो इस वसीयतनामे पर पेंशन कर दें तो सेठ की सब सम्पत्ति में आपको दिला दूँ क्योंकि तुम सेठ के बड़े पुत्र और हकदार होते हुए तुम्हारा नाम सेठ ने जानबूझ कर इरादापूर्वक नहीं लिखा है इसलिये उनकी लिखावट (वसीयतनामे) को मानने में क्या लाभ ?

यह बात प्रधानजी के मुँह से सुनते ही सुन्दरकुमार बोला—

"प्रधानजी! मैंने सुना था कि आप बड़े न्यायी, विद्वान एवं विचारक हैं परन्तु क्या बात है जो आपके मुँह

से यह शब्द निकले। वैसा करना तो दूर रहा मुझे यह सुनना भी उचित नहीं है।

प्रधान—नहीं कुंवरसाहब! आपके पिताश्री ने भूल की है वह सुधारने की ही बात करता हूँ।

कुंवर—मेरे पूज्य पिताजी बहुत ही बुद्धिमान समझदार एवं चतुर थे वे भूल करें ऐसा मैं मानता ही नहीं हूँ।

प्रधान-नगरसेठ को उचित था कि वे उनकी सम्पत्ति का सब कार्यभार आपको सौंपते और अन्य कुँवरों को क्या देना यह आपकी मरजी पर छोड़ते अथवा किसको क्या देना यह वे स्पष्ट कर देते। ऐसा कुछ नहीं किया, यही उनकी भूल है।

कुँवर-प्रधानजी! हम तीनों बधुओं की प्रकृति, स्वभाव एवं गुण-दोष से वे पूर्णतया परिचित थे। मुझसे भी अधिक जानते थे। इसलिये उन्होंने इरादापूर्वक विचार करके ही यह किया है ऐसा मैं मानता हू इसमें उनका गूढ आशय क्या था यह समझने का कार्य आपका है। आप उस तरफ तो लक्ष्य देते नहीं, विचार करते नहीं और उनको दोष देकर मुझे अन्याय एवं अनीति के मार्ग में घसीटना चाहते हैं सो उधर घसीटना तो दूर

रहा मैं "उनका दोष था या भूल की है" यह वचन भी सुनना नहीं चाहता अतः अब मैं जाता हूँ और महाराज से अर्ज कर दूँगा कि प्रधानजी सच्चा न्याय करने में असमर्थ हैं।

प्रधानजी ने सोचा कि अब इस कुंवर को अधिक कहना वृथा है इसलिए वे वहां से उठे और कुंवर सुन्दर को कहने लगे कि कुंवर साहब! आप स्वल्प समय के लिये यहीं पर शांति से विराजिये।

सुन्दरकुमार के कमरे से निकलकर प्रधानजी उस कमरे में आये जहां नगर सेठ का मध्यम पुत्र वसन्त बैठा था। वे वसन्तकुमार से कहने लगे-कुंवर साहब, मैं तुम्हारा हित का विचार करके कहता हूँ कि साधारण रीति से सबसे बड़े पुत्र तथा सबसे छोटे पुत्र पर मनुष्य का प्रेम अधिक रहता है इसलिये सेठ ने तुमको अपनी सम्पत्ति में से वञ्चित रखने के लिये ही ऐसा लिखा है और तुम्हारे साथ अन्याय किया है। अतः मेरी सलाह है कि तुम इस वसीयतनामा पर पेशाब करदो तो मैं तुम्हारा हक तुम्हें दिला दूँ।

वसन्तकुमार-प्रधानजी, आपके मान के खातिर ऐसे अनीतिपूर्ण शब्द सुन लेता हूँ। यदि आपके स्थान पर अन्य

कोई होता तो मैं यह बता देता कि पिता का अपमान करने वाले का क्या हाल होता है।

प्रधान—कुवरजी, संसार-व्यवहार के कार्य में यदि आप उतावल करोगे तो सभी गुमा बैठोगे। जरा शान्ति रक्खो। मगज ठण्डा करके शांति से विचारो कि तुम्हारा हित किसमें है।

कुमार—अनीति के मुकाबले में मैं शान्ति रख सकूँ, यह बात मेरी प्रकृति में ही नहीं है। मुझे गुमाने या खोने का कुछ है ही नहीं। मनुष्य जब पहले नीति को खोता है तभी सब कुछ खोता है। पिता की सम्पत्ति में से मौज-मजा करने वाला पुत्र तो अधम पुरुष है। मेरे पूज्य पिताश्री ने मुझे नीति एव धर्म की शिक्षा दी है और व्यापार-कला भी सिखला दी है। यही सबसे अधिक अमूल्य निधि-वारसा में मुझे मिल चुकी है। मेरे पिता के दिये हुए शिक्षण से मेरे भाग्य में होगा तो इससे अधिक सम्पत्ति मैं पैदा कर लूगा। यदि मेरे भाग्य में ही सम्पत्ति नहीं होगी तो पिताश्री की सम्पत्ति में से मिला हुआ धन भी नष्ट हो जाएगा। अतः मुझे सम्पत्ति का लोभ नहीं है और मुझसे यह घृणित कार्य भी नहीं होगा।

प्रधान-कुमार तुम्हारे खयाल उचित नहीं है। अभी

पिता की सम्पत्ति में से कुछ नहीं मिलेगा तब उसने प्रधानजी से पूछा कि अब कोई उपाय है ?

प्रधान-क्यों नहीं ? उपाय है सीधा और सरल। तुम इस पर पेशाब करदो। मैं इस अन्यायी ठहरा कर तुमको उसमें से तुम्हारा हिस्सा दिला दूंगा।

शान्तिकुमार कुछ भी विशेष विचार नहीं करते हुए तुरन्त वसीयतनामा प्रधानजी से लेकर सामने के एक कोने में गया और वसीयतनामे को नीचे रख कर पेशाब करने को बैठ गया। यह देख कर प्रधानजी को विश्वास हो गया कि नगर-सेठ ने इसी तीसरे पुत्र को इसके खराब आचरण देख कर अपनी सम्पत्ति से वञ्चित रखा है सो अब इसका निर्णय दिया जा सकेगा। परन्तु साथ ही प्रधानजी को यह भी शंका उत्पन्न हुई कि सेठ-सेठानी दोनों ही धर्मिष्ठ थे तदनुसार उनके सभी पुत्र धर्मिष्ठ ही होने चाहिये उसके बदले यह तीसरा कुंवर ऐसा क्यों हुआ ? यह विचार करके वसीयतनामा शान्तिकुमार के पास से वापिस लेकर प्रधानजी बाहर आये और सब बातें जो उन तीनों कुंवरों के साथ हुई थी, महाराजा को कह सुनायी और तीनों कुंवरों को महाराजा के पास बुलवा कर बैठाये। प्रधानजी महाराजा की अनुमति प्राप्त करके सेठानी से मिलने के लिये नगर सेठकी हवेली पर पधारे।

प्रकरण ५ वाँ

शंकासमाधान एव वार्तालाप
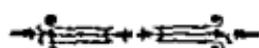
प्रधानजी को हवेली पर पधारते देखकर उपस्थित मुनीमों एव नौकरों ने उनका उचित स्वागत किया। प्रधानजी के कहने पर दासी के साथ खबर भेजी और प्रधानजी हवेली के अन्दर पधारे। सेठानी विद्यादेवी ने प्रधानजी को यथोचित सत्कार देकर हवेली पर पधारने का कारण पूछा। वह बोली–कहिये प्रधानजी, आपको यहा पधारने का कष्ट क्यों उठाना पड़ा ?

प्रधानजी—आपके तीनों कुमार दरबार साहब के पास अर्जदार बनकर आये हैं उनकी परीक्षा करते हुए ज्ञात हुआ कि प्रथम के दो कुमारों की अपेक्षा तीसरे की प्रकृति विचित्र है। इससे मुझे शका है कि ऐसा क्यों ?

सेठानी—आप शका समाधान करने के लिए यहा पधारे हैं ?

प्रधान—जी हा।

सेठानी—कहिये, क्या शका है ?

प्रधान—अब जरूरत नहीं रही। स्वयमेव समाधान होगया।

सेठानी—किस प्रकार ?

प्रधान—आपको देखने से ही।

सेठानी—यानी ?

प्रधान—नगर-सेठ का और आपका पारस्परिक प्रेम कैसा था, यह कौन नहीं जानता ? ऐसे प्रेमी पति के वियोग से पत्नी को कितना दुख एवं आघात लगना चाहिये किन्तु आपके चेहरे पर ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता। इससे मेरी शंका का समाधान स्वयमेव होगया।

सेठानी—प्रधानजी, यह भी कहावत है कि "चतुर मनुष्य ही भींत भूलता है"। यह उक्ति यहां भी चरितार्थ हुई दिखाई दी।

प्रधानजी—किन्तु यहां भींत भूलने का प्रसंग ही क्यों ? प्रत्यक्ष जैसा दिखाई दिया वैसा ही शंका का समाधान किया।

सेठानी—देखने देखने में भी बड़ा अन्तर होता है, आप यह जानते हैं ?

प्रधान मेरी दृष्टि विकृत नहीं है।

सेठानी—आपकी दृष्टि शंका से विकृत हो चुकी है इसीसे धर्म-भावना को आप नहीं जान सकते। जिसके हृदय में वह धर्म-भावना विद्यमान होती है वह दुःख का पहाड़ आ गिरने पर भी शोक एवं चिन्ता को उतना महत्त्व नहीं देता है किन्तु सम्यग्भाव से उसे सह लेता है। मेरे हृदय में भी वह धर्म-भावना विद्यमान है इसलिये मैं शोक एवं चिन्ता को उतना महत्त्व नहीं देती हूँ और चित्त में समाधि रखती हुई बाहरी दिखावा अधिक नहीं करती हूँ।

यह सुनते ही प्रधानजी को अपनी भूल समझ में आई। उन्होंने सेठानी की तरफ देखा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि यह तो एक प्रतिभाशाली सती नारी के तेज से देदीप्यमान बनी हुई है। नगर सेठ के वियोग की दुखद स्थिति में भी समभाव को धारण किए हुए शान्तस्वरूपा बन रही है। शीघ्र ही अपनी भूल का पश्चात्ताप करते हुए उठकर सेठानी को प्रणाम करके नम्रतापूर्वक बोले—

"देवी! मेरी भूल के लिए क्षमायाचना करता हूँ।"

सेठानी—प्रधानजी साहब, आपका हृदय शुद्ध एवं निर्मल है यह मैं मानती हूँ परन्तु अभी आपकी शंका का समाधान आपने कहाँ प्राप्त किया है?

प्रधान—देवी ! मेरी बुद्धि अभी कुण्ठित हो गई है अतः आप ही खुलासा कीजिए।

सेठानी—आपके दिल में शंका यही है न कि एक ही पति के वीर्य से उत्पन्न हुई और एक ही उदर में पोषण पाई हुई सन्तान समान स्वभाव की होनी चाहिए फिर तीनों बन्धुओं के स्वभाव एवं प्रकृति में इतना अन्तर क्यों पड़ा ?

प्रधान—जी हाँ, यही शंका है।

सेठानी—आपकी इस मान्यता में दो भूलें हैं। एक यह कि प्रत्येक संसारी आत्मा का स्वभाव एवं उसकी प्रकृति अपने २ पूर्वकर्मानुसार होती है, एक-सी नहीं होती। नीतिकार भी कहते हैं कि—

> एकोदरसमुद्भूता, एकनक्षत्रजातकाः।
> न भवन्ति समा शीले, यथा बदरिकण्टकाः॥
>
> —चाणक्य नीति, अध्याय पाँचवां

भावार्थ—एक ही उदर में उत्पन्न हुए और एक ही नक्षत्र में जन्मे हुए होने पर भी अपने २ पूर्वकर्मानुसार पृथक २ स्वभाव एवं शील वाले मनुष्य होते हैं किन्तु समानाचार वाले नहीं होते। जैसे बोरड़ी के काटे

सब आड़ेटेढ़े होते हैं किन्तु एक से नहीं होते। इस सिद्धांत को आप नहीं मानते हैं क्या ?

दूसरी बात यह है कि बालक के गर्भ में आने से लेकर जन्म तक माता के जैसे आचार-विचार होते हैं वैसे ही संस्कार गर्भस्थ बालक पर पड़े बिना नहीं रहते। इसलिए गर्भवती स्त्री को बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि सावधानी नहीं रक्खी जाती है तो उसका परिणाम भी वैसा ही आता है।

प्रधानजी--इससे तो यह सिद्ध होता है कि आपके लघु पुत्र गर्भ में थे तब आपको कोई बुरे विचार पैदा हुए होंगे परन्तु आप जैसी धर्मात्मा नारी के लिए यह कैसे मानने में आ सकता है ?

सेठानी--हाँ, यह बात सच्ची है और वह मैं आपको समझाती हूँ।

प्रकरण ६ ठा

संगति का असर
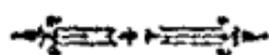
सेठानी बोली—मेरे पतिदेव ने कन्याओं की शिक्षा के लिए कुछ समय पहले एक कन्याशाला कायम की थी, यह आपको भी ज्ञात होगा। उस कन्याशाला की मुख्याध्यापिका के स्थान पर एक सुशिक्षित पण्डिता स्त्री रखी थी जिसका नाम था चिन्तामणि। वह स्वभाव की बहुत मिलनसार, बोलने में बहुत चालाक, एवं वर्ताव में बहुत चतुर थी। उसके साथ मुझे अल्प समय में ही सखी जैसा गाढ़ प्रेम हो गया।

चिन्तामणि यद्यपि पण्डिता थी, बहुत पढ़ी लिखी थी किन्तु धार्मिक ज्ञान एवं आचरण के अभाव में सच्ची विदुषी होने के बदले शुष्क ज्ञान वाली होती गयी। उसका मुख्य ध्येय यही था "यह भव मीठा, परभव किसने दीठा" परन्तु थी बहुत चतुर इसलिए एकदम वह अपनी मनोभावना प्रगट नहीं होने देती थी फिर भी बात-चित करते-करते दूसरों को अपने ध्येय की तरफ घसीट कर ले जाती

थी। मै उसके विचारों के प्रवाह में किस प्रकार वह चली, इसका मुझे भी भान नही रहा।

उसी समय यह शान्तिकुमार मेरे गर्भ में था। मै भी अध्यापिका चिन्तामणि के सहवास एवं संगति से मौज-मजा में आगे बढती ही गई। मुझे अपनी धर्म-मर्यादा आदि का खयाल जितना चाहिए उतना नहीं रहा। गर्भ के बालक के विचारानुसार माता को दोहद उत्पन्न होता है अतः गर्भवती के स्वास्थ्य की रक्षा के खातिर उसके सब दोहद की पूर्ति की जाती है अन्यथा वह अपना स्वास्थ्य खो बैठती है। ऐसा मानकर मेरे पतिदेव मेरी सभी इच्छाए पूर्ण करते थे किन्तु उन्हें यह ज्ञात हो गया कि कोई खराब सस्कार वाला प्राणी गर्भ में आया है। इसलिये सेठानी को ऐसी इच्छाए उत्पन्न होती है।

इस प्रकार करीब आठ महीने निकल गये इतने में मै भी चिन्तामणि की सोबत से नास्तिक-सी बन गई। उस समय एक घटना ऐसी बनी कि जिससे सच्चा भेद खुल गया। वह घटना इस प्रकार है:—

मेरे पतिदेव के कोई वैष्णव व्यापारी मित्र यात्रा करने के लिये जाने का विचार करके अपने घर का सार-भूत आभूषण एकत्रित कर, एक पेटी में भरकर मेरे पति-

देव के पास लाये और कहा कि मै यात्रा करने को जाता हूँ इसलिए आप यह पेटी अपने पास रख मैं जब मैं आऊगा तब वापस ले जाऊगा । पेटी में करीब लाख रुपये के आभूषण आदि थे । वे मित्र अपने घर के किसी व्यक्ति को या पुत्रों को न कहते हुए खानगी में ही वह पेटी लाये थे । मेरे स्वामी ने पेटी खोलकर जेवर की नोंध करके पहुच (रसीद) लिख देने को कहा परन्तु उनको मेरे पतिदेव का इतना भरोसा था कि उन्होंने रसीद भी नहीं ली और कहा कि मित्र पर अविश्वास करने के पाप से मुझे बचाओ ।

यात्रा करके एक वर्ष बाद वे पीछे घर तरफ लौट रहे थे कि प्रकृति की विषमता और शरीर का साधन चाहिये वैसा नहीं रहने से मार्ग में वे बीमार पड़ गये और आयुष्य बल के अभाव में अचानक स्वर्गवासी हो गये । उसकी खबर मेरे स्वामी को मिलते ही उन्होंने बहुत अफसोस किया और मुझसे कहा कि वह जेवर की पेटी जो अपने पास पड़ी है उनके पुत्रों को बुलाकर सौंप दें ।

गर्भ के प्रभाव से कहो या कुसगति के असर से मेरे हृदय में पाप आया और मैंने कहा कि अनायास अपने पास आयी हुई सम्पत्ति उनके पुत्रों को क्यों दी

जाय। उनको कहा पता है कि अपने पास उनका कुछ है। यह वाक्य सुनते ही मेरे पतिदेव के हृदय में वज्राघात सा लगा। उनका हृदय भर आया और वे मुझसे कहने लगे—

"देवी! जेवर छिपाकर अनीति पूर्वक किसी का धन हजम करने की कुबुद्धि तुम्हें कैसे सूझी? क्या आज संसार से सत्य का लोप होगया है जो तुम्हारे जैसी प्रतिष्ठापात्र धर्मिष्ठ नारी के मुख से यह वचन सुन रहा हूँ।"

सेठानी—मेरे विचार बदले थे तदनुसार मैंने सेठ साहब से कुछ उत्तर प्रत्युत्तर किये। उन्होंने मुझसे पूछा कि यह सब चालाकी और होशियारी तुमको किसने सिखलायी? मेरी प्रतिष्ठित हवेली में और मेरी अर्द्धाङ्गना में यह विचार कैसे प्रवेश कर गये? आश्चर्य है।

मैंने सेठ साहब से हाथ जोडकर क्षमा याचना करते हुए निवेदन किया कि यह सब मेरी सखी अध्यापिका चिन्तामणि की सोबत का परिणाम है।

तब सेठ ने मुझे समझाते हुए कहा कि चिन्तामणि विदुषी होते हुए भी नास्तिक हो, ऐसा लगता है। यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि धर्म खो देने से सब नष्ट

होजाता है और धर्म कायम रख लेने से खोई हुई सम्पत्ति भी आकर मिल जाती है तथा नाम भी प्राप्त हो जाती है। किन्तु धर्म गुमा देने सञ्चित लक्ष्मी भी अनेक रास्तों से होकर चली जाती है इसलिये मनुष्य को सम्पत्ति की अपेक्षा धर्म एव सत्य की ही रक्षा करनी चाहिये और इसकी रक्षा में अपनी सर्व शक्ति लगा देनी चाहिये । इस प्रकार उन्होंने मुझे समझाया और धर्म में स्थापित किया। यह उनका महान् उपकार हुआ ।

मैंने भी तब से अध्यापिका चिन्तामणि का ससर्ग कम कर दिया तथा उसको कन्याशाला से भी विदा दी ।

केवल शिक्षा से ही बालक-बालिकाओं के सस्कार नहीं सुधरते परन्तु शिक्षा के साथ शिक्षक का जीवन जितना सुसस्कारी, धार्मिक व त्यागमय होगा उतने ही सस्कार वह अपने आश्रित बालकों में भरेगा और उतना ही उसका असर पड़ेगा । केवल लम्बी चौड़ी व्याख्या करके समझाने या पढ़ाने से उन विद्यार्थियों पर सस्कार नहीं पड़ते किन्तु अध्यापक के आचरण का प्रभाव बालक-बालिका पर पड़ेगा इसलिये शिक्षा के साथ-साथ शिक्षक का आचरण भी उच्च कोटि का होना चाहिये ।

प्रकरण ७ वाँ

पुनः धर्मभावना

उस अध्यापिका चिन्तामणि की सोबत छूटने से तथा मेरे पतिदेव के विचारों का प्रभाव पडने से मैं पहले की अपेक्षा अधिक श्रद्धावान् एवं धर्म-विचारों में दृढ़ हो गई। वे संस्कार भी शान्तिकुमार में उतरे हैं। इसके एक मास पश्चात् इसका जन्म हुआ। चिन्तामणि की सोबत से जो नास्तिकता मुझ में आ गई थी उसके संस्कार उसमें पडे हों या शान्तिकुमार के पूर्वभव के संस्कार इससे प्रबल बन हों जो अच्छे शिक्षण से भी नहीं मिटे और यह मौका आया। उस पर आपकी नीति का असर पड़ा और वह निन्दनीय कार्य करने को तत्पर हो गया।

प्रधानजी—आपने कहा वह सब सत्य है परन्तु कुछ भी हो आखिर तो वह भी आपका पुत्र है उसको अपनी सम्पत्ति के वर्गीकरण में से वंचित कर सेठ साहब ने अन्याय किया है ऐसा आपको नहीं लगता है?

सेठानी—यह अन्याय तो गौण वस्तु है। मुख्य

हो जाता है और धर्म कायम रख लेने से खोई हुई सम्पत्ति भी आकर मिल जाती है तथा नवीन भी प्राप्त हो जाती है। किन्तु धर्म गुमा देने सञ्चित लक्ष्मी भी अनेक रास्तों में होकर चली जाती है इसलिये मनुष्य को सम्पत्ति की अपेक्षा धर्म एवं सत्य की ही रक्षा करनी चाहिये और उसकी रक्षा में अपनी सर्व शक्ति लगा देनी चाहिये। इस प्रकार उन्होंने मुझे समझाया और धर्म में स्थापित किया। यह उनका महान् उपकार हुआ।

मैंने भी तब से अध्यापिका चिन्तामणि का संसर्ग कम कर दिया तथा उसको कन्याशाला से भी विदा दी।

केवल विद्वत्ता से ही बालक-बालिकाओं के संस्कार नहीं सुधरते परन्तु विद्वत्ता के साथ शिक्षक का जीवन जितना सुसंस्कारी, धार्मिक व त्यागमय होगा उतने ही संस्कार वह अपने आश्रित बालकों में भरेगा और उतना ही उसका असर पड़ेगा। केवल लम्बी चौड़ी व्याख्या करके समझाने या पढ़ाने से उन विद्यार्थियों पर संस्कार नहीं पड़ते किन्तु अध्यापक के आचरण का प्रभाव बालक-बालिका पर पड़ेगा इसलिये विद्वत्ता के साथ-साथ शिक्षक का आचरण भी उच्च कोटि का होना चाहिये।

प्रकरण ७ वाँ

पुनः धर्मभावना

उस अध्यापिका चिन्तामणि की सोबत छूटने से तथा मेरे पतिदेव के विचारों का प्रभाव पड़ने से मैं पहले की अपेक्षा अधिक श्रद्धावान् एवं धर्म-विचारों में दृढ़ हो गई। वे संस्कार भी शान्तिकुमार में उतरे हैं। इसके एक मास पश्चात् इसका जन्म हुआ। चिन्तामणि की सोबत से जो नास्तिकता मुझ में आ गई थी उसके संस्कार उसमें पड़े हों या शान्तिकुमार के पूर्वभव के संस्कार इससे प्रबल बने हों जो अच्छे शिक्षण से भी नहीं मिटे और यह मौका आया। उस पर आपकी नीति का असर पड़ा और वह निन्दनीय कार्य करने को तत्पर हो गया।

प्रधानजी—आपने कहा वह सब सत्य है परन्तु कुछ भी हो आखिर तो वह भी आपका पुत्र है उसको अपनी सम्पत्ति के वर्गीकरण में से वंचित कर सेठ साहब ने अन्याय किया है ऐसा आपको नहीं लगता है?

सेठानी—यह अन्याय तो गौण वस्तु है। मुख्य

महाराजा के पास जाता हूँ। उनको सब यथोचित अर्ज करके हम यथाशक्ति शान्तिकुमार को सुधारने की कोशिश करेंगे।

सेठानी—महाराजा साहब को मेरी तरफ से प्रार्थना करिये कि यदि शान्तिकुमार को आपश्री रास्ते पर ले आएंगे तो मैं श्रीमान् की आभारी होऊँगी और मुझ पर पूर्ण उपकार होगा।

प्रधान—प्रजा को सुधारने में मदद करना राजा का कर्त्तव्य एवं धर्म है। इसमें कोई उपकार माने या न माने इसकी हमें अपेक्षा रखने की आवश्यकता नहीं है। यह कहते हुए प्रधानजी नगरसेठ की हवेली से निकल कर दरबार में उपस्थित हुए।

दरबार हॉल में प्रवेश कर प्रधानजी ने सब वृत्तान्त महाराजा साहब को अलग कमरे में ले जाकर विदित किया। महाराजा को भी यह रहस्य जानकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ और सेठानीजी की बुद्धिमत्ता एवं चातुर्य के प्रति विशेष मान हुआ। नगरसेठ के तीनों पुत्र उसी खानगी कमरे में बुलाये गये और महाराज की आज्ञा से प्रधान साहब ने उनकी परीक्षा करते हुए सुन्दरकुमार

तथा वसन्तकुमार कैसे अडिग रहे और शान्तिकुमार कैसे ललचा गया और पिता श्री के लेख की अवहेलना करने को तत्पर हो गया, वह सब कह सुनाया और शान्तिकुमार वसीयतनामे के लेखानुसार वारसाना हक्क से वञ्चित होता है यह निर्णय सुना दिया।

प्रकरण ८ वाँ

पश्चात्ताप और हृदय-परिवर्त्तन
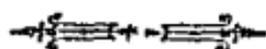
पूर्वोक्त निर्णय प्रधानजी के मुँह से महाराजा के समक्ष सुनकर शान्तिकुमार को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसका कंठ भर आया। वह बोलना चाहता था किन्तु जबान अटक गई और वह रोने लगा। कुछ रोने के पश्चात् जब हृदय हलका हुआ तब वह कहने लगा:—

"लोभ में पड़कर मैंने बहुत ही निन्दनीय काम किया है। मैं इसका हार्दिक पश्चात्ताप करता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि पिताश्री की सम्पत्ति का वारसाना हक प्राप्त करने के लिये वस्तुतः अयोग्य हूँ अतः आप श्रीमान् के निर्णय को शिरोधार्य करता हूँ।

उस समय सुन्दरकुमार एवं वसन्तकुमार ने सोचा कि हमारा लघु भ्राता शान्तिकुमार अब सुधर चुका है। भूल का भान होने से इसे हार्दिक पश्चात्ताप हो रहा है। इस लिये अब हम इसे वञ्चित नहीं रख सकते। ऐसा सोचकर दोनों बड़े भ्राताओं ने पारस्परिक सलाह मिलाकर कहा

कि हम दोनों भाई अपने २ हिस्से की सम्पत्ति में से चतुर्थांश शान्तिकुमार को देते हैं।

प्रधानजी—कुमार ! इससे आपके पिताश्री की इच्छा की अवहेलना होती है, ऐसा आप नहीं मानते हैं क्या ?

दोनों कुमार—नहीं। हमारे हिस्से में से भी हमारे लघु भ्राता को हमें कुछ नहीं देना ऐसा हमारे पिताश्री अपने वसीयतनामे में कहीं नहीं लिख गये है। अतः ऐसा करने में हमारे पिताश्री की इच्छा की अवहेलना नहीं हो सकती।

शांतिकुमार—"नहीं भाई साहब, मैं सचमुच हिस्सा लेने के योग्य नहीं हूँ इसलिए मैं कुछ नहीं लेता हूँ। आप दोनों बड़े भ्राताओं की सेवा करने में ही अपना जीवन बिताऊँगा।"

महाराजा एवं प्रधानजी ने शांतिकुमार को उसकी शुभ निष्ठा एवं सन्मार्ग पर आ जाने के लिए धन्यवाद दिया और दोनों बड़े भाईयों की आज्ञानुसार वर्तने की शिक्षा देकर तीनों कुमारों को विदा किया।

तीनों भाई अपने घर पर आये। शान्तिकुमार सीधा माता के पास आकर चरणों में गिर पड़ा और खूब रोया।

अपनी उद्दण्डता का पश्चात्ताप करके क्षमा मांगी । माता ने उसे उठा कर उसके मस्तक पर एवं पीठ पर हाथ फेर कर सान्त्वना दी और धर्म को कभी नहीं भूलने की शिक्षा दी । शांतिकुमार ने भी यावज्जीवन धर्म को आगे रख कर प्रवृत्ति करने की प्रतिज्ञा की ।

सुन्दरकुमार और वसन्तकुमार में पारस्परिक प्रेम ऐसा था कि वे अपनी पितृ-सम्पत्ति का बँटवारा करना चाहते ही नहीं थे और अब तो शांतिकुमार भी सुधर गया इस लिए वर्गीकरण करने की आवश्यकता ही नहीं रही ।

तीनों भाइयों ने सम्मिलित रह कर अपने पिता के व्यवसाय में अत्यधिक वृद्धि की । वे कुशलतापूर्वक व्यापार-धन्धा करते हुए और कुटुम्ब, जाति, समाज, देश एवं धर्म की सेवा करते हुए सुख-शांतिपूर्वक रहने लगे ।

यह देख कर उनकी माता को बहुत सन्तोष हुआ । उसने तीनों को हार्दिक भावों से शुभाशिष दी और अन्त समय में समाधिभाव को प्राप्त कर अपना कल्याण किया ।

तीनों भ्राताओं ने भी नगरसेठ की कीर्ति को अक्षुण्ण रख कर धर्म की आराधना करते हुए अपना कल्याण किया ।
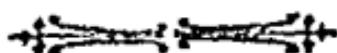
उपसंहार

कथा-वार्ताओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं वरन् सत्-शिक्षा देना होना चाहिए। इस उद्देश्य के अनुसार इस पुस्तक से हमें क्या शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए यह संक्षेप में समझाता हूँ:—

(१) पूर्वकाल में राजा और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध पिता-पुत्रवत् थे। प्रजा अपने राजा के प्रति पूर्ण वफादार रहती और राजा महाराजा भी प्रजा के सुख-दुख को लक्ष्य में रखते थे, बन सके उतने दुख दूर करने को सदा सचेष्ट रहते थे और प्रजा को अपने सुख दुख में सविभागी बनाते थे इससे प्रजा के हृदय में अपने राजा के प्रति भक्ति एव कृतज्ञता बनी रहती थी और उनके पसीने के बदले अपना खून बहाने को तत्पर रहती थी।

(२) पूर्व कालका न्याय बहुत सरल एव सादा था। न तो प्रजा में इतना झूठ कपट था और न राज्य ही वैसी नीति का आश्रय लेता था। लोग अपनी दुख-कहानी सत्य २ कह सुनाते थे जिस में से अधिकारी वर्ग या महाराजा असलियत को पहचानकर दूध का दूध और पानी का पानी वाला न्याय देते थे। जिससे अपील दर अपील पेशकर वर्षों पूरे करने का अवसर ही नहीं आता था, न सरकारी दफ्तरों में कागजी ढेर और कारकूनों का जमघट रहता था।

(३) पूर्व काल के मनुष्य स्वभाव से आस्तिक सरल एवं अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा रखते थे। कोई भी लालच या भय दिखाकर उन्हें विचलित एवं लक्ष्य-भ्रष्ट नहीं बना सकता था। वे अपने पूर्वजों के प्रति आदर भाव रखते थे, अपनी विद्वत्ता एवं बुद्धिमत्ता का उन्हें तनिक भी अभिमान नहीं होता था। चाहे कितने भी विद्वान् क्यों न हो वे अपने कुलाचार एवं पूर्वजों से चली आती हुई परम्परा को सम्मान की दृष्टि से देखते और प्रत्येक प्रवृत्ति में उसे आगे रखकर तदनुसार अपनी प्रवृत्ति करते थे। उन्हें अपने देश का, जाति का, समाज का, कुल का गौरव रहता था और वे उसका आदर करते थे। अपनी धर्म-भावना के आगे आर्थिक प्राप्ति को तुच्छ मानते थे। इससे वे धर्म-कर्म में दृढ़ रहते थे और विचलित नहीं होते थे।

(४) पूर्व संस्कार भी मनुष्य को किस प्रकार गिरा देते हैं यह शान्तिकुमार की अस्थिर विचारधारा से प्रकट होता है किन्तु धर्म छोड़ने से धन नहीं मिलता यह निश्चित है इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह अधम विचारों में अपने को न बहाने किन्तु दृढतापूर्वक धर्म एवं नीति पर दृढ रहे। सत्य पर दृढ़ रहने वाले के पास सम्पत्ति स्वयं आकर उसकी दासी बनती है।
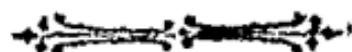
सम्पादक की ओर से प्रकाशित साहित्यः—

(१)	वैधव्य दीक्षा	मूल्य
(२)	भक्तामर स्तोत्र (हिन्दी भावार्थयुक्त)	"
(३)	परमात्म प्रार्थना (भावग्राही कविता)	"
(४)	भारतीय बाल्य जीवन एवं विवाहादि संस्कार	"
(५)	मानुषी या देवी (आख्यायिका)	"
(६)	स्त्री जीवन की आदर्श शिक्षा	"
(७)	वास्तविक शिक्षा	"
(८)	आत्म-शुद्धि-मार्ग	"
(९)	श्रावक धर्म प्रतिपादक नियम	"
(१०)	आदर्श भावना	"

प्राप्ति स्थानः—

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल

रतलाम.

श्री अनोदय प्रिंटिंग प्रेस, चौमुखीपुल रतलाम

अन्ध-श्रद्धा

लेखक —
बालचंद श्रीश्रीमाल
रतलाम

आवश्यक दो शब्द

संसार ताप से संतप्त प्राणियों को शान्ति प्रदान करने के लिए महापुरुषों ने प्रवचन किये हैं। उनको शास्त्रकारों ने चार विभागों में विभक्त किये हैं। यथा द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग तथा कथानुयोग। किसी भी चरित्र का चित्रण कथानुयोग में है। कथानुयोग जनसाधारण के लिए बहुत उपयोगी माना जाता है। इससे अल्पज्ञ भी हेयोपादेय का बोध करके तदनुसार अपना विकास साध सकता है। कथानुयोग जैसा सरल है वैसा ही जटिल भी है। क्योंकि इसमें जीवन के अनेक रंग पूरे जाते हैं। रंग पूरते समय सावधानी न रखी जावे तो साधारण जनता उसका दुरूपयोग भी कर बैठती है। इसलिए कथानुयोग की रचना करते समय सावधानी रखना परमावश्यक है।

पूर्व काल में चरित्र चित्रण का ढंग निराला था। आज निराला है। आज जनता की रुचि को लक्ष्य बना कर चरित्र चित्रण होने लगे हैं। मैं भी आज एक वैसा ही साहस कर रहा हूँ। उसमें मैंने कहां तक सफलता प्राप्त की है यह विचारने का काम सुज्ञ वाचकों का है।

मेरा आशय साहित्य की कीमत कम रख कर स्वल्प व्यय द्वारा जनता को लाभ पहुँचाने का है। परन्तु वर्तमान समय मे महगाई इतनी बढ गई है कि मेरी भावना कार्यान्वित नहीं हो पाती तथापि जितना बन सके ध्येय के नजदीक रहने का ही उद्देश्य है।

इस साहित्य की रचना में एक गुजराती भाषा की चौपाई का (जो श्री गोंडल सम्प्रदाय के विद्वान् मुनि की रचना है) आधार लिया है इसलिए उनके प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

भवदीय
—लेखक

विषयानुक्रमणिका

१	नगर का दृश्य	१
२	प्रेम पाश मे	७
३	माता-पिता का स्नेह	१२
४	वेश्या के भवन मे माता का मिलाप	१७
५	संस्कारों का प्राबल्य	२२
६	वास्तविकता पर प्रकाश	२६
७	सन्तान रहित क्लीत्व	३१
८	टीडा भट्ट की भापा सिद्धि	३६
८ब	मन की भ्रमणा	४१
९	मुसीबत का पहाड़	४४
१०	मलिन भावना	४९
११	अपहरण और पुत्र विछोह	५३
१२	माता वेश्याघर में कैसे ?	५६
१३	युक्तिपूर्वक स्वरक्षण	५९
१४	कामान्ध का सर्वनाश और मेरा छुटकारा	६५
१५	पति का परलोक गमन	७१
१६	ऊल की चूल में	७४
१७	पाप का प्रायश्चित	८०
१८	शील का प्रभाव	८५
१९	उपसहार	९१

॥ ॐ ॥
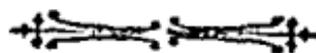
अन्ध-श्रद्धा

प्रकरण १

नगर का दृश्य
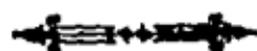
भारतवर्ष की लक्ष्मी स्वरूपा चम्पावती नामक नगरी अनेक हाटहवेलियो, अट्टालिकाओ और भवनों से सुशोभित थी। व्यापार की सुविधा तथा माल का आयात निर्यात अधिक होने से बाहर के लोगो का वहा आवागमन बना ही रहता था।

पूर्व काल में भारत में जब रेल का आविष्कार नहीं हुआ था उस समय व्यापारी लोग सगठित रूप से ही व्यवसाय-यात्रा करते थे। कई श्रीमन्त सार्थ निकाल कर साधारण व्यापारियों को व्यापार मे तथा मुसाफिरी में सुविधा देते थे इससे लोग उनके साथ हो जाते थे। कई लोग मिलकर बनजारों के रूप मे पोठियों [बैल या पाडो] पर माल लाद कर प्रयाण करते थे।

एक स्थान से माल खरीद कर दूसरे स्थान में बेचते थे और व
से पोसाता हुआ माल खरीद कर बाहर ले जाते थे। किसी कि
बारद में तो हजारों पोठिये माल ढोकर चलते थे। जो ला
पोठियों की बारद चलाता वह लाखी बनजारा कहलाता था।

किसी समय मरुधर देश का एक लाखी बनजारा अप
बारद लेकर चम्पावती के समीप पहुँचा। शहर की अनु
दिव्यता, सुन्दरता एवं भव्यता से आकर्षित होकर बनजारा
वहीं अपना पड़ाव डाल दिया। तब बारद के बहुत से लो
अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए शहर में जाने लगे। शहर
इन विदेशी लोगों का आगमन देख कर कोई बड़ा व्यापारी आ
है यह जान कर चम्पावती के कुछ लोग अपने लाभार्थ उस छाव
में आये और क्या २ माल आया है जिसकी पूछताछ करने
व्यापारियों का यह स्वभाव होता है कि वे नवीन खोज करते
और प्रसंग प्राप्त होने पर उसमें लाभ उठाने का प्रयत्न करें।

बनजारे के पड़ाव को देख कर आगन्तुक लोग प्रसन्न
और कहने लगे कि यह बनजारा तो चम्पावती के श्रीमन्तों
श्रीमन्ताई भुला देने वाला है इत्यादि विचार कर परस्पर की पं
चान मिलनसारी व परिचय बढ़ाने लगे। क्योंकि व्यापार
यह बातें मुख्य हैं। जहां तक परिचय नहीं बढाया जाता व
तक विश्वास नहीं जमता और विश्वास के बिना क्रय-विक्रय न
होता। बिना क्रय विक्रय के अर्थोत्पत्ति नहीं होती। इसलि
ऐसा करना व्यापारियों के लिए आवश्यक है।

इस बनजारे का पुत्र जिसका शुभ नाम हंसराज है औ
जिसकी आयु इस समय पन्द्रह सोलह वर्ष की होगी बाल्यावस्था

पूर्ण कर जवानी में प्रवेश कर रहा है। वह शरीर की सुन्दरता एव पूर्वोपार्जित पुण्य से दर्शकों के दिल को हरण करे जैसा भाग्यशाली भी है।

अपने पड़ाव से दृष्टि गोचर होती हुई नगरी के दिखाव से आकर्षित होकर वह माता पिता की सेवा मे उपस्थित होकर कहने लगा कि पूज्य पिताजी चिरकाल से पन्थ काटते काटते आज अपना प्रयास सफल हुआ है। महल, मन्दिर और अट्टालिकाओ से सुशोभित यह नगरी स्वर्ग को भी पराजित करने वाली है। इसलिए आपकी आज्ञा हो तो मै अपने मित्रों के साथ इसकी शोभा देखने को जाऊँ और शहर की रचना को देख कर मेरा मन प्रसन्न करूँ। यह नगरी बाहर से ही इतनी रमणीय बन रही है तब अन्दर कैसी होगी। अतएव जाने को आज्ञा दीजिये।

यह भारतीय शिष्टाचार है। पूर्वकाल में यहां ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे शिक्षित होने के साथ साथ सन्तानों में विनय, योग्यता और पात्रता बढ़ती थी। उच्च श्रेणी पर पहुंचने पर भी युवक अपने माता पितादि गुरुजनो के प्रति नम्रता पूर्ण शिष्ट प्रवृत्ति करते थे। उनकी आज्ञा मानते और प्रत्येक कार्य उनकी आज्ञा प्राप्त करके करते थे। आज की तरह उद्धत, निरंकुश और अविनयी नहीं होते थे। दुर्भाग्य से वर्तमान समय के युवको एवं युवतियो में स्वछन्दता और निरकुशता का प्रवेश हो गया है यह पाश्चिमात्य शिक्षा का परिणाम है। पारस्परिक जीवन का सुख पूर्व प्रणाली से था या वर्तमान प्रणाली से है यह वाचक स्वयं विचार करें।

वनजारा अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य प्रकट करता हुआ कहने लगा पुत्र ! कल भी अपन यहीं रहेंगे। इस समय सायकाल हो गया है। सूर्यास्त होने की तैयारी है, राज कचहरियाँ तथा बाजार बन्द होने का समय आ पहुँचा है। अत मेरी ऐसी इच्छा है कि तुम प्रात काल अपने मित्रों सहित नगर देखने के लिए जाना।

हसराज ने भी पिता की उचित आज्ञा मानना अपना कर्त्तव्य समझ कर उसे स्वीकार किया और रात्रि आनन्द पूर्वक पड़ाव में ही व्यतीत की। नीतिकार कहते हैं कि—

ते पुत्रा ये पितुर्भक्ता, पिता यस्तु पोषकः
तन्मित्र यत्र विश्वासः, सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥१

भावार्थ—पुत्र वही है जो अपने माता पिताओं का भक्त और आज्ञाकारी है। और पिता वही है जो पोषक हो। अर्थात् खान पान से ही नहीं किन्तु जो उचित शिक्षा द्वारा उसका पोषण कर योग्य एव पात्र बनाता है। मित्र वही है जहां परस्पर विश्वास हो। भार्या वही है जिसके अन्त करण में प्रेम का समुद्र लहरा रहा हो। ये बातें न हों तो जानना कि वह सच्चा कुटुम्ब नहीं परन्तु विडम्बना है।

दूसरे दिन प्रात काल होते ही हसराज शरीर चिन्तादि नित्य कर्त्तव्यों से निवृत्त होकर पोशाक धारण कर अपने मात पिता की सम्मति ले अपनी मित्र मडली सहित चम्पावती की तरफ चला और अल्प समय में ही नगरी के प्रवेश द्वार पर उपस्थित हो गया। अपार लक्ष्मी से सुशोभित यह नगरी देवपुरी जैसी रमणीय दिखाई देती थी। मार्ग के दोनों तरफ रही हुई भव्य

मकानों की पक्तियाँ निरीक्षको का दिल आकर्षित करती थीं। हवेलियों के नीचे के खण्डो मे व्यापारी लोग अनेक प्रकार के माल एव किरानो की सजावट कर व्यापार करते हुए दिखाई देते थे। देशी विदेशी स्त्री पुरुष विविध प्रकार की पोशाक में आवश्यक वस्तुएँ खरीद रहे थे। जिनके उपर के खण्डो में रग बिरगी सजावट के आवास घर थे। उनमें राग-रग हो रहे थे जो पथिको का मनोरजन करते ये। राज मार्ग पर सेठ साहूकारो के गाडी घोडे रथादि दौड़ रहे थे जो पथिको को सावधानी सूचक आवाज भी देते थे।

इस प्रकार शहर की शोभा देखता हुआ हसराज अपनी मित्र मडली से विनोद करता चला जा रहा है। इतने में बाजार के बीच एक सतखण्डी हवेली दिखाई दी जिसके अन्दर अनेक प्रकार के राग रग, गान-तान आदि हो रहे थे। आगन्तुक खडे रहकर यहा का दृश्य देख देख कर विस्मित होते थे।

इसी समय हवेली के दूसरे खण्ड के झरोखे में बैठी हुई नायिका की दृष्टि बाजार में खडे हुए इस युवक पर पड़ी। उसे देखते ही उसने "यह कोई अमीर का पुत्र है यदि इसे अपनी जाल में फसाया जाय तो, काफी आमदनी हो सकती है" यह विचार कर अपनी एक दूती को भेजी। चरित्रहीन कुलटाएँ ऐसी ताक में ही रहती हैं। उनका यही व्यवसाय होता है।

दूती कुवर के पास आकर हाथ जोड कर कहने लगी—हे भाग्यशाली! आप यहा क्यों खडे है? अन्दर पधार कर हवेली का और हवेली के अन्दर रही हुई विभूति का अवलोकन करिये।

नायिका को सौंप सातवें मजिल की विभूति का एक बार उपभोग करूँ। कहा है —

> वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिताः ।
> कामिभिर्यत्र हूयन्ते, यौवनानि धनानि च ॥
> (भर्तृहरि श्रृङ्गार

भावार्थ—वेश्या रूप के ईन्धन से धधकती हुई काम की प्रचण्ड ज्वाला है जिसमें कामी पुरुष अपना धन और यौवन का होम कर डालते हैं।

ऐसा निश्चय करके हंसराज अपने साथियों को कहने लगा मित्रों! आपकी इच्छानुसार शहर की शोभा देखकर आप लोग उतारे पर पधारें मैं अभी यहीं ठहरूँगा। यह सुनकर हंसराज की मित्र मंडली उसके आन्तरिक भावों को समझकर वहां से चल दी और वे बाजार से आवश्यक वस्तुएँ खरीदकर पड़ाव की तरफ आने लगे।

हंसराज भी नायिका को कहने लगा कि मैं अभी ही पिता के पास जाकर उनसे पांच लाख की रकम सातवें मंजिल की फीस स्वरूप लाकर वापिस आता हूँ। यह कहकर वहाँ से डेरे की तरफ चल दिया।

बड़े २ शहरों में जितनी विलासी साधनों की प्रचुरता होती है मनुष्यों का पतन भी उतने ही प्रमाण में अधिक होता है आज भी बम्बई कलकत्ता देहली आदि भारत के मुख्य नगर हैं उनमें विलासी साधन भी बहुत हैं और अविवेकी मनुष्यों का पतन भी

वहा अधिक प्रमाण में होता है। नाटक, सिनेमा आदि का आविष्कार प्रारम्भ में चाहे अच्छे उद्देश्य से ही हुआ हो परन्तु उन से उचित शिक्षा ग्रहण करने वाले तो वहुत कम प्रमाण में मिलेंगे किन्तु इनके द्वारा एय्याशी, वदमाशी, छल, कपट आदि दुर्गुण ही अधिक प्रमाण मे पल्ले पडते हैं। हसराज के लिए भी यही हुआ है।

ही साधन (निमित्त) खडे करती है। मनुष्य उसकी शक्ति नहीं जानता इसलिए बारम्बार आश्चर्यचकित होता है। कहा है —

> तादृशा जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः ॥
> सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ १ ॥
>
> —चाणक्य

भावार्थ—वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है वैसे ही ... जाते हैं और सहायक भी वैसे ही मिल जाते हैं जैसा भावी वाला होता है। कहा है —

> न निर्मितः केन न दृष्टपूर्वकः, न श्रूयते हेममय कुरंगः
> तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य, विनाश काले विपरीतबुद्धिः॥
>
> चाणक्य नीति

भावार्थ—न किसी ने बनाया न किसी ने पहले ... न सुना कि सोने का मृग होता है किन्तु महापुरुष श्री रामचन्द्र जैसे भी सोने के मृग की माया जाल न समझ कर तृष्णा व उसे पकड़ने को दौड़ पड़े तब सीताजी का हरण हुआ।

पिता कहता है कि हे पुत्र, ऐसी पापी प्रवृति कराने वा वेश्या का कुसग तुझे कैसे हो गया ? द्रव्य का मुझे कुछ भी विच नहीं है इससे भी अधिक रकम देने को तैयार हूँ किन्तु तब ! उसका सद् व्यय होता हो। जहा जाने मात्र से ही मनुष्य की प्रतिष्ठा का ह्रास हो जाता है पतित बन जाता है और नरकादि के घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं ऐसी कुलटाओं के यहा जाना

और उनसे सम्पर्क साधना भले आदमियो इज्जतदारों के लिए लाच्छन स्वरूप है ऐसी कुट्टनियो से बचना ही श्रेष्ठ है एव उसी मे क्षेम कुशल है।

> कश्चुम्बति कुलपुरुषो, वेश्याधरपल्लव मनोज्ञमपि ॥
> चारभटचोरचेटक, नटविटनिष्ठीवनशरावम् ॥
>
> भर्तृहरि शृङ्गार शतक

भावार्थ—वेश्या का अधर पल्लव यदि अत्यधिक सुन्दर हो तो भी कौन कुलीन पुरुष उसे चुम्बन करे क्योंकि वह ठग ठाकुर चौर नीच नट-विट और जार पुरुषो के थूकने का ठीकरा हैं। प्रत्येक मनुष्य उससे नफरत करे ऐसी यह वेश्याए होती हैं।

इत्यादि अनेक प्रकार का सद्बोध पिता ने दिया परन्तु जिसको तीव्र मोह का उदय होकर जो काम से परास्त हो जाता है उसे वह हितकर शिक्षा भी नहीं रुचती उल्टा उसे दूसरा ही ख्याल होता है यही बात हसराज के लिए भी हुई।

उसने सोचा इस तरह से तो पिताजी रकम देंगे नही और बगैर रकम दिये मेरा वहा जाना हो नही सकता। विना वहा गये तथा सातवीं मजिल पर रही हुई अद्‌भुतता देखे विना मुझे चैन पड़ेगी नही इसलिए इस समय कुछ उपाय करना चाहिये यह सोचकर वह बोला—पूज्य पिताजी ! आपका फरमाना ठीक है परन्तु मैं अब उसे टालने में असमर्थ हूँ यदि आपको रकम नही देना है तो जाने दीजिये मैं अब अपना धार्या करता हूँ मेरे अब तक के अपराधों को क्षमा करना यह मेरा अन्तिम प्रणाम है। कहने के साथ ही अपनी कमर में लटकती हुई कटार

ही साधन (निमित्त) खडे करती है। मनुष्य उसकी कृतिया नहीं जानता इसलिए वारम्बार आश्चर्यचकित होता है कहा है —

> तादृशा जायते बुद्धिर्व्यवसायोपि तादृशः ॥
> सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥ १ ॥

—प

भावार्थ—वैसी ही बुद्धि उत्पन्न होती है वैसे ही जाते हैं और सहायक भी वैसे ही मिल जाते हैं जैसा भावी वाला होता है। कहा है —

न निर्मितः केन न दृष्टपूर्वकः, न श्रूयते हेममय कुरंगः
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य, विनाश काले विपरीतबुद्धिः।

चाणक्य नीति

भावार्थ—न किसी ने बनाया न किसी ने पहले न सुना कि सोने का मृग होता है किन्तु महापुरुष श्री रामचन्द्र जैसे भी सोने के मृग की माया जाल न समझ कर तृष्णा उसे पकड़ने को दौड पडे तब सीताजी का हरण हुआ।

पिता कहता है कि हे पुत्र, ऐसी पापी प्रवृति कराने वाल वेश्या का कुसग तुझे कैसे हो गया ? द्रव्य का मुझे कुछ भी विचा नहीं है इससे भी अधिक रकम देने को तैयार हूँ किन्तु तब कि उसका सद् व्यय होता हो। जहा जाने मात्र से ही मनुष्य की प्रतिष्ठा का ह्रास हो जाता है पतित बन जाता है और नरकादि क घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं ऐसी कुलटाओं के यहां जाना

प्रकरण ४

वेश्या के भवन में माता का मिलाप
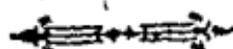
रुपये पच्चीस हजार रिणजारा ने पोठियों पर लदाये [illegible] समय हंसराज भी अपने पडाव से विदा होकर गणिका के [illegible] उपस्थित हुआ। नायिका उसका अभिवादन करती हुई [illegible]दर प्रवेश करने का आमन्त्रण करने लगी।

हंसराज पहले ही मंजिल में चढकर देखता है तो यह [illegible]न जगमग जगमग प्रकाशमान हो रहा है। वहा रत्ने[illegible] एक पलग पर बैठा कर नायिका ने अपने अधीनस्थ सर्व [illegible]न्दरियों को आदेश दिया कि बहुत समय से आज सातवें [illegible]जिल की फीस देने वाला यह भोगी भवर अपना महमान हुआ [illegible] अत इसका आदर सत्कार करके इसका मनोरंजन करो। [illegible]देश पाते ही आस पास के कमरों में रही हुई शृङ्गार युक्त [illegible]सज्जित सुन्दरियां हंसराज के पास आकर विविध प्रकार के [illegible]मोत्तेजक प्रयोग करने लगीं। यथा.

> भ्रूचातुर्याकुञ्चिताक्षाः कटाक्षा,
>
> स्निग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासा।
>
> लीलामन्दं प्रस्थितं च स्थितं च,
>
> स्त्रीणामेतद्भूषणं चायुधं च ॥ १ ॥

—भर्तृहरि शृ गार शतक

भावार्थ— भौंहें पलटाने की चतुराई, आगे कुछ मुड़ कर टेढी नजर से कटाक्ष करना, स्निग्ध एवं मधुर वचन बोलना, लज्जा करना, फिर हसना, मन्द मन्द गति से लीला करती हुई चलना और घूम कर खड़ी हो जाना यह क्रियां के स्वभाविक भूषण तथा कामी पुरुषों को वश में करने के आयुध (शस्त्र) मा हैं

यह सब चेष्टाएं देखकर हंसराज विचार करता है कि स्वर्ग की विभूति को भुलावा दे ऐसी स्थिति तो यहीं है तब जिस की फीस मैंने भरी है वहां कैसी तय्यारी होगी अथवा क्या क्या है यह चल कर देखना चाहिये। अग चेष्टा की जानकार नायिका कहने लगी है—महापुरुष उठो और मेरे साथ सातवें मंजिल पर चलो। यह सुनते ही हंसराज वहां उपस्थित तरुणियों के तेज जिसका मन आधीन नहीं हुआ है वह उठ कर ऊपर चढने लगा प्रत्येक माले में उसका इसी प्रकार स्वागत होने लगा और व की विशिष्ट सामग्री देख देख कर आश्चर्य पाता हुआ छ मंजिल में पहुँचा वहा भी वैसा ही स्वागत और मनोरंजन हुआ किन्तु वहा भी न रुकते हुए जहा का चार्ज दिया है वहीं जा की इच्छा ने उसे विवश किया। तब नायिका बोली हे भाग्य शाली अब आप इस चढाव से उपर सातवें मंजिल में जाइ चौबीस घंटे तक इच्छानुसार सुखोपभोग करिये और अप दी हुई फीस को सार्थक कीजिये यह कह कर नायिका वहां चली गई।

सातवीं मंजिल की सीढियों पर चढते हुए हंसराज सोचत है कि इस मंजिल तक नयी नयी नव यौवना सुन्दरियों ने मुझे अपने प्रेम में फांसने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया और इतना

क मेरा मन मुग्ध किया परन्तु सर्वोपरि शोभा के स्थान रूप
तवें खण्ड की सुन्दरी जो मेरे स्वाधीन की गई है वह किस
ारी में लगी हुई है यह मुझे पहले गुप्त रूप से चलकर देखना
हिये । यह विचार करके अपने पांव की आवाज रोक कर
ही पर से ही दृष्टि डालता है तो उसके नयनो को चकाचोंध
ऐसी सजावट व पलग आदि देखा परन्तु वहा रही हुई सुन्दरी
दम विचार मग्न और दीनता युक्त चेहरे से बैठी हुई दिखाई
। उसे शोक सागर में डूबी हुई एव आंखों से अश्रुधार बहाती
देख कर हसराज आश्चर्य करने लगा और विचारने लगा कि
क्या बात है ?

यह मजिल में पहुँच कर पलग पर बैठ गया। यद्यपि बाहर
शोभा और सजावट तो उस सुन्दरी की भी वैसी ही थी, वस्त्रा
रण वैसे ही बहुमूल्य थे जिससे कि आगन्तुक आकर्षित हो
ाय परन्तु हृदय के भाव इसके विपरीत ही थे । वह सोच रही
कि मेरे पूर्व कृत कर्मों ने मुझे यहा लाकर रखी फिर भी पाप
पुण्य के झाड़े मे बारह वर्ष तो बीत गये और मैं अपने शील
की रक्षा कर सकी एव अपने पूर्व दुखो को भूल सी गई थी
न्तु आज अनायास यह क्या आफत आयी है। प्रभो ! अब
पराधीन बनी हुई आज मेरे शील धर्म रूपी रत्न की रक्षा कैसे
र सकूगी। हे क्रूर दैव ! मेरे पापो ने मुझे कहा से कहा लाकर
ल दी । कहा मेरे पति, कहा मेरे पुत्र, कहा मेरा घर और कहा
? इत्यादि विचारो मे मग्न बनी हुई निश्वास डालकर धूजने
गी और अनायास बोल उठी प्रभो ! अब तो समय आ पहुँचा
मुझे पवित्र स्थिति में ही देह त्याग करने में सहायक बनिये ।
रण कि यह तरुण पुरुष सुर भवन से ही मेरी लाज लूटने को

और आपके बाल्यकाल की घटना माता-पिता से पूछकर मुझे सुनावें तो मैं आपकी बहुत अहसानमन्द रहूँगी। मेरे पुत्र को मुझ से बिछुड़े करीब इतना ही समय हुआ है इससे मेरे हृदय में यह उत्सुकता है अत कृपा करके मेरे दिल का समाधान करने के लिये आप अपना वृत्तान्त पूछ आवें।

इस प्रकार के सती के मृदु और कोमल वचन सुनकर हंसराज सोचने लगा कि यह युवती यदि इससे सन्तुष्ट हो जाय तो ऐसा करने में मुझे क्या हानि है? यह विचार कर हंसराज कहने लगा—हे कोमलागी, धैर्य धरो मैं अभी माता पिता से पूछ आता हूं। यह कहकर वह भवन से नीचे उतरा और अपने पड़ाव मे उपस्थित हुआ। स्वल्प समय में ही हंसराज को वापस आया देखकर बणजारा को यह शंका हुई कि ऐसी कौन सी वस्तु की इसे जरूरत पड़ी जिससे इसे पीछा आना पड़ा।

दोनों दम्पति यह तर्क करते थे इतने में हंसराज माता पिता के पास आकर विनय पूर्वक पूछने लगा कि हे माता पिता! मैं किसका पुत्र हूँ और मेरी पूर्व स्थिति यानी बाल्यकाल की कोई विशेष घटना है? यदि हो तो यथावस्थित प्रकट कीजिये।

वाचक को यहां यह शंका होना स्वाभाविक है कि दूध का पाना चढ़ने आदि के द्वारा उस सती को तो अपना अगज होने का वितर्क हो सकता है परन्तु हंसराज को माता-पिता के समक्ष ऐसा प्रश्न करने का क्या कारण है? इसके लिये यही कहा जा सकता है कि हंसराज को भी उत्सुकता पैदा यों हुई कि जो स्त्री एक क्षण पहले सामने भी नहीं देखती थी वह निर्भय

होकर बात करने लगी और उसका हाथ पकडते ही उसकी भी विकार भावना बदल गई जिससे इसे भी विचार हुआ कि यह क्या बात है। पूर्व संस्कार भी अपना कार्य कराते ही हैं। प्रत्यक्ष न जानने पर भी बुद्धिमान अनुमान पर से विचार कर सकता है।

पुत्र के द्वारा यह प्रश्न सुनकर बनजारा और उसकी स्त्री असमजस मे पड गये कि इसे पूर्व की बात किसने बता दी जो आज पुत्र इस प्रकार प्रश्न करता है। इसे क्या उत्तर देना चाहिये इस प्रकार शकाशील चेहरे से कुछ विलम्ब करके वे उत्तर देने लगे—प्रिय पुत्र! तेरे जैसे विचक्षण और बुद्धिमान को इस प्रकार की (बालक जैसी) शका कैसे हुई और यह बात पूछने का साहस ही क्यों पैदा हुआ। तू हमारा एक मात्र ही पुत्र है और हमें प्राण मे भी प्यारा है। यह सब तेरा ही है। ऐसी बातें जाने दे। क्या मतलब है ऐसी बातें पूछने से? विलम्ब से और फिर भी टालमटोल का उत्तर मिला इससे हसराज को भी भ्रम हुआ कि कुछ रहस्य अवश्य होना चाहिये अन्यथा इन्हें विचार में पडने की क्या आवश्यकता थी और सुनते ही ये स्तब्ध क्यों बन गये? अब तो सच्ची हकीकत जाननी ही चाहिये। बुद्धिमान और विलक्षण मनुष्य इस प्रकार चेष्टा एव बोलने की पद्धति से विषय की वास्तविकता को समझ जाते हैं यह मतिज्ञान के क्षयोपशम की विचित्रता है। एक मनुष्य इशारे से समझ जाता है दूसरा पूरी बात समझाने पर भी नहीं समझता है और उसे उल्टी तानता है। यही कर्म सिद्धान्त की सिद्धि है।

प्रकरण ६ ठा.

वास्तविकता पर प्रकाश

ज्यों २ माता पिता की तरफ से सच्ची बात प्रकट हो
विलम्ब तथा आनाकानी होने लगी त्यों २ हंसराज की अधिका
उत्सुकता बढ़ती गई और वह आग्रह करता जाता था।
उसके मन का समाधान होता न दिखाई दिया तब कमर में
कती हुई कटार खींचकर अपनी छाती में भोंकने को तैयार हु
यह दुःसाहस देखकर आसपास के मनुष्यों ने उसका हाथ प
लिया और समझाने लगे कि आपको इस प्रकार का दुस्सा
करना उचित नहीं है।

माता पिता ने भी सोचा कि अब असली बात छिपाने
कोई लाभ नहीं है। सब एकीकर कह देना ही उचित है।
विचार कर वे कहने लगे—पुत्र! आज से तेरह वर्ष पूर्व
मारवाड़ छोड़कर व्यापारार्थ निकले थे और विदेश जाते
रहे थे उस समय जो रास्ता अब आने वाला है वहां जंगल
एक वट वृक्ष के नीचे भूमि पर एक श्वेत रंग का कपड़ा बि
हुआ था उस पर सोया हुआ तू हमें मिला। उस समय

आयु करीब दो वर्ष की होगी। पास मे कोई भी नहीं था। अरण्य भूमि मे माता पिता रहित आक्रन्द करते हुए तुझे देखकर हमें दया आई और हमने वहा से ऊठा लिया। ऐसे भयानक जगल में देवकुमार जैसा पुत्र छोड कर जिसने तुझे जन्म दिया है वह माता कहाँ चली गई होगी और उस माता पर न मालूम कौन सा विपत्ति का पहाड आ गिरा होगा कि तेरे जैसे रत्न को उस भयानक जगल मे दिन के समय त्याग करना पडा होगा यह शका हमें भी बहुत बार होती रहती है परन्तु तेरे आगे हमने कभी प्रकट नहीं की और न करने का कारण ही था। यह असलीयत प्रकट करने का पहला प्रसग है। हम तो तेरे रक्षक माता पिता हैं सच्चे जन्म देने वाले नहीं फिर भी तू हमें प्राणो से प्यारा है। हमने आज तक जन्म जात पुत्र की तरह ही तेरा रक्षण व पोषण किया है और यह सब सम्पत्ति तेरी है। तू किसी तरह ख्याल न करना। हमारा तू ही आधार है।

रक्षक माता-पिता के द्वारा यह बात सुन कर साश्चर्य बने हुए हसराज की विचार धारा किसी दूसरे ही रूप में बदल गई और वह अपने माता-पिता को उसी पूज्य बुद्धि से नमन करता हुआ उनका आभार मान कर वहा से चल दिया।

नगरी के द्वार पर पहुँच कर शहर में प्रवेश करते ही उसे कुछ अपशकुन हुए परन्तु उसका इस तरफ लक्ष्य ही नहीं था उसका लक्ष्य तो सातवें मजिल में रही हुई दुखी तरुणी को अपनी पूर्व स्थिति बता कर रहस्य जानने को उत्सुक था। शीघ्र ही गणिका के भवन में आकर सीधा सातवें माले पहुँचा। सीढी पर से पग सचार सुनकर माले में रही हुई वह स्त्री उठ कर

खडी हुई और सत्कार पूर्वक आसन पर बैठने का करने लगी। पलग पर बैठकर कुछ समय विश्राम लेने सती कहने लगी कि हे महाभाग ! आपने मेरे लिए जो कष्ट है उसके लिए मै आपकी कृतज्ञ हूँ। अब यह बतादे कि को वहा कोई नवीन बात जानने को मिली ? कृपा कर ताकि मेरे मन का समाधान हो।

हसराज कहने लगा कि हे सती आपकी शका ने तो आज कोई नया ही अनुभव कराया है अब तक जिनको जन्म देने वाले माता-पिता मानता था आपकी प्रेरणा से पर वे तो मात्र मेरे रक्षक और पोषक माता पिता ही हैं मेरी और पोषण करने जितना ही हक धराते हैं किन्तु जन्म देन मातपिता कौन होगा यह तो वे भी नहीं जानते। उन्होंने मुझे ही बताया है कि आज से तेरह वर्ष पूर्व हम जब देशाटन थे और व्यापारार्थ बारद लेकर जा रहे थे उस समय एक जगल मे एक वट वृक्ष के नीचे किसी रुमाल पर लेटा हुआ निरा धार स्थिति मे तुझे पाया उस समय तेरे पास कोई भी नहीं था। तेरी आयु उस समय करीब दो वर्ष की थी। उन्होंने आस पास को न देख कर मुझे उठा लिया।

यह बात जानने पर मुझे भी मेरी स्थिति के विषय में गहरी शकाए हो रही हैं कि मेरे माता पिता ने किस कारण से मुझ उस निर्जन वन मे छोड़ा होगा और उनकी क्या दशा हुई होगी।

पूर्ण रूप यथार्थ निर्णय तो अतिशय ज्ञानी ही कर सकते हैं किन्तु प्रत्येक आत्मा में यह शक्ति रही हुई है कि वो

शान्ति पूर्वक अपनी बुद्धि एव विचार शक्ति का सदुपयोग करे और प्रयत्न करे तो वह वास्तविकता को प्राप्त कर सकता है। चाहिये हार्दिक जिज्ञासा। आत्मा ही आत्मा का साक्षी है। यदि अपनी आत्मा को शुद्ध बना ले तो विपरीत वृत्ति वाला प्रतिपक्षी विपरीतता त्याग कर शत्रु से मित्र, दुष्ट से सज्जन और विकारी भी निर्विकार बन जाता है।

हसराज के द्वारा उसकी पूर्व स्थिति सुनते ही उस सती के समक्ष वह पूर्व घटना सब ताजा खडी हो गई और जिस स्थिति में उसने पुत्र को छोडा था वह सुनकर उसका हृदय भर आया। उभय नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। बड़ी कठिनता से हृदय को थामकर गद्‌गद् स्वर से कहने लगी—

हे प्रिय पुत्र ! पूर्व कृत कर्मों ने तो मेरे ऊपर दुखों की हद पूरी कर दी। तू ने मेरे ही उदर मे उत्पन्न होकर दो वर्षों तक मेरे ही इन स्तनो का पय पान किया परन्तु दुर्दैव ने तुझको भी मुझ से दूर किया जिसको आज तेरह वर्ष बीत चुके। मैं निरन्तर रात दिवस तेरा ही स्मरण चिन्तन करती थी और समय बिताती थी क्योंकि पतिदेव तो अब इस ससार में रहे नही, मुझे निराधार स्थिति मे छोड़कर चल बसे। केवल तेरी ही आशा से जीवित थी किन्तु तू अपनी दुखियारी माता को ऐसा अनिष्ट प्रसग लेकर मिला कि वह याद आते ही हृदय चिरा जाता है। अच्छा होता कि ऐसा प्रसग आने से पहले ही मेरी मृत्यु हो जाती तो मैं अपने को भाग्यशाली मानती। इस प्रकार अपने पूर्व कर्मों को दोष देती विलखती उस स्त्री को देखकर खेदातुर बना हुआ हसराज कहने लगा कि आपसे मेरा यह दृष्टि मिलाप भी जिन्दगी मे पहली बार

ही हुआ है इससे पहले न तो आपको मैंने पहले कभी देखा है और न आपने ही मुझे देखा होगा फिर मुझे किस आधार से पुत्र के सम्बोधन से वार २ पुकारती हो, समझ में नहीं आता। यदि तुम पवित्र रहने की इच्छा से मुझे पुत्र कहती हो तो अब मुझ से भय खाने की जरूरत नहीं मैं तुम्हें सच्चे हृदय से विश्वास दिलाता हूं कि अब मुझ से जरा भी भय न रखो। जब से तुम्हारी और मेरी दृष्टि मिली है तब से मेरे हृदय में से भी वह बुरी भावना निकल गई है। मैंने उन विकारी विचारों को त्याग दिये हैं परन्तु मुझे यह आश्चर्य हो रहा है कि मुझे जन्म देने वाली माता का दावा आप किस आधार से धराती हो ? मेरी माता इस वेश्या घर में कैसे ? अतः जिस प्रकार आपने मेरी स्थिति जानने की चेष्टा की उसी प्रकार मुझे भी आपकी पूर्व स्थिति बताने की कृपा करोगी कि जिससे मैं यह समझ सकूं कि मैं किस प्रकार आपका जन्म जात पुत्र हूं और आपने किस कारण से वेश्यागृह में प्रवेश करके अपने शील धर्म की रक्षा की जैसा कि आपने पूर्व में कहा है।

पुत्र का प्रश्न सुनकर सती ने पश्चाताप में पिघलते हुए हृदय को थामकर अपना बीतक वृतान्त कहना इस प्रकार प्रारम्भ किया

प्रकरण ७

सन्तान रहित जीवन
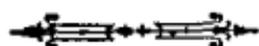
इस भूमडल पर स्वर्ग को भी स्पर्श करने वाली विजया नाम की एक अति रमणीय नगरी है जो सभी प्रकार सम्पन्न है। जहा न्याय नीति का पारगामी प्रजा के प्रति अपनी फरज को समझने व अदा करने वाला कुमुदचन्द्र राजा राज्य करता है। उसकी प्रेम पूर्ण छत्रछाया में सकल प्रजा आनन्द पूर्वक निवास करती है। उसी नगरी में पुष्कल वैभव तथा विद्वता द्वारा राज्य तक जिसकी प्रतिष्ठा फैली हुई है ऐसा ब्रह्मदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था जो बडा ही गौरवर्ण एव सुशोभित वदन वाला और भद्र प्रकृति का था। मैं उसकी अर्द्धाङ्गिनी हू। हम दोनो पति-पत्नी सुख पूर्वक रहते थे। सासारियों के सभी सुख हमारे स्वाधीन थे हम किसी के आश्रित नहीं थे अपितु स्वतत्र थे परन्तु एक कमी मुझे बारम्बार सताया करती थी। वह यह कि घर में सन्तान नहीं थी। एक रोज पडोसी के बाल बच्चो को प्रागण में खेलते हुए देख कर तथा एक दिन वह पडोसी बहन मेरे पास आई तब उसके बालक भी साथ थे उन्हें अपनी गोदी में बैठा कर प्रेम पूर्वक उनका चुम्बन किया क्रीडा कराई और अनेक प्रकार के गुणगुणे शब्दो

से सम्बोधन कर अपना प्रेम प्रदर्शित किया। यह देख मेरे
पर उसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उसके जाने के बाद चिन्ता
करने लगी कि हे प्रभो! मैंने ऐसे क्या पाप किये जिससे
एक भी सन्तान का सुख नसीब नहीं हुआ अन्यथा में भी
प्रकार लाड प्यार करके अपनी मनोकामना पूर्ण करती
अपने स्त्रीत्व को सफल बनाती। इस प्रकार चिन्ता करती
आखों से अश्रुधारा बहाने लगी। इतने में तेरे पिताजी भी
में आगये। उन्होंने मुझे रोती हुई देख कर आश्चर्य से पूछा
घर में किस बात की कमी है और तुम्हें कौनसा दुख है जि
इस प्रकार विषाद करके शरीर का नाश करती हो? यदि मुझ
छिपाने लायक बात न हो तो तुरन्त कहो। मैं यथाशक्ति
तुम्हारा दुख दूर करने की चेष्टा करूंगा।

पतिदेव के इस प्रकार सान्त्वनायुक्त वचन सुन कर
उनसे कहने लगी-स्वामिन्! आपकी मुझ पर प्रेम पूर्ण कृपा
होवे वहाँ दुख हो ही कैसे? किन्तु आपकी इतनी महती
हुए तथा एक गृहस्थी को होनी चाहिये उतनी सभी सुविधा
सम्पत्ति होते हुए भी इस घर को दीपाने वाला कुलदीपक पुत्र
आपको अर्पण न कर सकी यही मेरी चिन्ता का विषय है। जो
स्त्री पति के घर में आकर स्वान, पान, वस्त्राभूषण आदर सत्कार
एवं पति का प्रेमोपहार लेकर कुलदीपक पुत्र अथवा कन्या देती
है वही स्त्री धन्य है। मैंने आपसे सभी प्रकार सुख के साधनों
का कर्जा लिया है किन्तु बदले में कोई सन्तान भेंट न कर सकी
यही दुख मुझे रह रह कर सताता है। मेरी मर्म भरी बात से
उन्हें भी दुख तो हुआ परन्तु ने तुरन्त ही अपने चित्त को शान्त

लाकर कहने लगे-देवी, यह क़ुदरती बात है मनुष्य के वश की
ात नहीं है। जब अपना भाग्योदय होगा तब सतान भी हो
ावेगी केवल चिन्ता करने से कुछ नहीं होता। इसलिये चिन्ता,
ोडो और प्रसन्न चित्त होकर कामना करती रहो। तुम्हारी आशा
फल हो जावेगी इतना कह कर वे अपने कार्य में लग गये।
रन्तु मैं इसी विचार में रहा करती थी कि किस प्रकार मुझे
न्तानसुख प्राप्त हो।

एक दिन मैं स्त्री स्वभावानुसार बोलमा (मिन्नत) करने
गी कि हे अम्बिके तू प्रसन्न होकर मुझे एक सन्तान देगी तो सन्तान
ुत्र, होने पर मैं अपने पति देव के साथ पैदल यात्रा करके तेरी
ना करू गी तथा उस बालक को भी तेरे पैरों पटकू गी। इस
कार का मैंने सुकल्प कर लिया।

मैंने उस समय इतना विचार नहीं किया कि पैदल
ात्रा करने मे कितने कष्टों का अनुभव होता है कितना समय
ागता है और कितनी मुसीबतें पार करनी पडती है कहा तो माता
म्बिका का स्थान कहा हमारा निवास कितनी दूरी पडती है
ौर वहा कैसे पहुँच सकेंगे आदि कोई विचार न करते हुए स्त्री
वभाव सुलभ सकल्प कर लिया। यह कहावत भी कही है कि
अशिक्षित स्त्रियों की मूर्खता का परिणाम सारे कुटुम्ब को भोगना
ाडता है।

मेरे भाग्य में भी सन्तान लाभ का समय निकट आ पहुचा
था इसलिए यह सकल्प करने के कुछ ही समय बाद मुझे आशा,
के अकुर दिखाई दिये। मैं गर्भवती हुई इसलिये मेरी प्रसन्नता
का पार न रहा। गर्भ का वह सुरम्य समय अनेक हार्दिक उमगों

से पूर्ण होकर तेरा जन्म मेरी कुक्षि से हुआ। शक्त्यनुसार जन्म की खुशी मनाई गई कुटुम्ब का मिष्टान्न तथा यथा योग्य सत्कार किया गया और "देवदत्त" तेरा शुभ रक्खा गया।

कुछ समय बीतने पर मैंने तेरे पिताजी को कहा मैंने इस पुत्र के लिए अम्बिका माता की बोलमा की थी कि अम्बिके तेरी कृपा से यदि मुझे सन्तान लाभ होगा तो मैं सहित पुत्र को लेकर पैदल यात्रा द्वारा तेरे दर्शन ... लिए आप पधार कर मेरी यह बोलमा पूर्ण करो और पुत्र अम्बिका माता के दर्शन कराओ।

तेरे पिताजी कहने लगे हे प्रिये! अम्बिका माता के क्या पुत्र रखा हुआ था सो उसने हमें दे दिया? हमारे न हो तो चाहे कितनी बोलमा क्यों न की जाय नहीं हो स... इसलिये यह न समझना चाहिये कि अम्बिका माता ने पुत्र ... है। भाग्य में न हो तो गर्भ में आकर भी उसका परिवर्तन जाता है।

श्रीकृष्ण की माता देवकी देवी के गर्भ में श्रीकृष्ण से एक दो नहीं परन्तु छ छ पुत्र गर्भ में आये और वे भी ऐसे शाली कि उनकी समता उस समय दूसरा कोई नहीं कर ... था चरमशरीरी तद्भव मोक्षगामी थे परन्तु उसके भाग्य में सुख नहीं था इसलिये जन्मते ही उनका देवद्वारा अपहरण ... जिस माता के भाग्य में सन्तान सुख था उसके यहा पहुंच... श्री कृष्ण को भी जन्मते ही गोकुल में भेजे गये इसलिये तेरी य... नहीं है कि अम्बिका ने ही पुत्र दिया।

यह तो टीडा भट्ट की अनर्गल भाषा भी उसके भाग्य की प्रबलता से सिद्ध हुई उसी तरह अपने भाग्योदय से ही यह पुत्र हुआ है जिसका पालन खूब सभाल पूर्वक सावधानी के साथ करो इसी प्रकार का वहम नहीं करो और सुख पूर्वक रहो ।

दालान में उन्हे आदर पूर्वक बिठलाये। घर में जाकर अपनी माँ से कहने लगा आज पंडितजी महाराज पधारे हैं बड़े ज्ञानी हैं अत इनके लिये भोजन बनाओ कहकर बाहर चला गया। कुम्हारिन ने रोटे बनाये किन्तु उसने विचार किया कि मैं भी तो देखूं पंडितजी कैसे ज्ञानी हैं? कुम्हारिन पंडितजी के पास आकर प्रणाम करके बोली महाराज आप बड़े ज्ञानी हैं तब बहिये मैंने कितने रोटे बनाये है? पंडितजी ने उत्तर दिया तेने पाँच रोटे और एक बाटिया बनाया है। कुम्हारिन आश्चर्य मे कहने लगी पंडितजी वास्तव में ज्ञानी हैं जिन्होने सच्ची बात बता दी रोटे तो बताये पर बाटिया भी बता दिया यही तो इनकी विशेषता है। कुम्हारिन ने प्रसन्न होकर ब्राह्मण को भोजन कराया।

छोटा गाव होने से पंडितजी की प्रशंसा फैलते हुए देर नहीं लगी यह बात ठाकुर की गढ़ी में भी पहुँच गई उस समय ठाकुर साहब के रणवास में से ठकुरानी का हार चोरी में चला गया था इसलिए ठाकुर साहब ने सोचा कि पंडितजी को बुला कर पूछना चाहिये। पंडितजी को ठाकुर साहब ने बुलवाया। प्रणाम कर ठाकुर साहब कहने लगे महाराज मेरा कीमती हार रणवास में से चला गया है आप बड़े ज्ञानी हैं बतलाइये वह किसने लिया? पंडितजी असमंजस में पड़ गये ये क्या बतायें किन्तु ठाकुर साहब कब मानने लगे? नौकरों को हुक्म दिया ये यों नहीं बतायेंगे इन्हें आज रात भर अमुक कमरे में बन्द कर दो। बेचारे ब्राह्मण के देवता कूच कर गये उसकी नींद हराम हो गई यह बन्द कमरे में बैठा हुआ रह रह कर कहता है "नींदड़ली हार बता" "नींदड़ली हार बता" उसी समय उस ठाकुर की ए

दासी जिसने वह हार चुराया था वहां आयी और कान देकर सुनने लगी। पडितजी को नींद न आने से कोई कोई वार उपरोक्त शब्द बोल जाते।

पडितजी का वह शब्द सुनते ही वह घबरायी, कारण कि उसका नाम भी इसी तरह का था। उसने सोचा पडिजी तो बडे ज्ञानी हैं सुबह ही ठाकुर साहब को कह देंगे तो मेरी क्या दशा होगी? वह वहा से जाकर गुपचुप हार लाकर उजालदान में से कमरे में डाल गयी। पडितजी के पास हार आकर पडा यह देख ब्राह्मण प्रसन्न हुआ खूटी तान कर सो गया, ऐसे खर्राटे भरने लगा कि सवेरा हो गया। उधर ठाकुर साहब ने प्रात काल होते ही कमरा खुलवाया। ब्राह्मण जगकर हार लेकर ठाकुर के पास आया। हार देखकर ठाकुर बहुत प्रसन्न हुआ उसे उचित पुरस्कार देकर वहीं रखा। अब तो ब्रह्मदेव ठाकुर साहब के महमान होकर रहने लगे। एक दिन ठाकुर साहब फिर हाथ में टीडी जानवर लेकर ब्राह्मण से पूछने लगे कहिये पडितजी मेरे हाथ में क्या है? अबतो पडितजी घबराये सहसा उसने एक दोहा बनाकर कहा।

पाल चरन्ता गधा पाया, थापाथीपी रोटा ॥
नींदडली तो हार बतायो, अबतो टीडिया की मौत आयी॥

पडिजी ने तो सहज भाव से वह दोहा कहा परन्तु भाग्य योग से वह भी लागू पड गया ठ कुर साहब ने हाथ खोल कर टीडी दिखादी इस प्रकार जब भाग्य अनुकूल होता है तो सभी बातें अनुकूल हो जाती है। कवि ठीक ही कहता है कि —

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शील,
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सचितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥"

—भर्तृहरि नीति शतक

भावार्थ—न तो मनुष्य की आकृति फलती है न कुल न शील न विद्या न सेवा। केवल पूर्व सचित किये हुए "तप के फल स्वरूप" भाग्य ही पुरुष को समय २ पर अपना शुभ फल देते हैं अर्थात् भाग्य के साथ ही उपरोक्त सब बातें लाभकारक बनती हैं बिना भाग्य (पुण्य) के यह कोई भी कार्यसाधक नहीं बनते हैं।

ब्राह्मण ठाकुर साहब से पुरस्कार प्राप्त कर विदा हुआ और अपने घर आया। मतलब यह है कि अपना भाग्य अनुकूल हो तभी देव देवी भी प्रसन्न होकर देते हैं अन्यथा देव देवी के नाम से बहुत से मनुष्य ठगे जाते हैं वास्ते बुद्धिमानों को प्रत्येक कार्य सोच विचार करके करना चाहिये।

प्रकरण ८ वाँ

मन की भ्रमणा

सती कहती है कि हे पुत्र ! पतिदेव का रूख देख कर मैं भी चुप हो गई और आनन्द पूर्वक अपना गृहकार्य और तेरा पालन प्रेम पूर्वक करने लगी इस बात को कुछ समय बीत गया। तू करीब दो वर्ष का होने आया उस समय मेरी असावधानी से और तेरे वेदनीय कर्म का उदय काल आने से तू बीमार होगया तब बहुत औषधोपचार किया परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। तेने स्तनपान भी करना छोड दिया और आक्रन्दन करने लगा तेरी यह दशा मुझ से देखी न गई मैं बहुत चिन्ता करने लगी। उस समय पूर्व की बोलमा की बात फिर याद आयी इससे कुछ भी विशेष विचार न करती हुई तेरे पिताजी के समक्ष ही मैंने कहा कि "हे अम्बिका माता यदि तेने कोप किया हो तो कृपया वापिस खींच लेना मैंने तेरे दर्शन इस बालक को कराने की बोलमा की थी परन्तु में वसा न कर सकी इससे रूष्ट होकर तेने यह पीडा की हो तो क्षमा करो अब मै फिर यह बोलमा करती हूँ कि इस बालक की पीडा दूर हो जावेगी तो स्वस्थ होने पर बालक को पैदल यात्रा से तेरे स्थान मे लाकर दर्शन कराने के बाद ही में

नैवाकृतिः फलति नैव कुल न शील,
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सचितानि,
काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥

—भर्तृहरि नीति शतक

भावार्थ—न तो मनुष्य की आकृति फलती है न कुल न शील न विद्या न सेवा। केवल पूर्व सचित किये हुए "तप के फल स्वरूप" भाग्य ही पुरुष को समय २ पर अपना शुभ फल देते हैं अर्थात भाग्य के साथ ही उपरोक्त सब बातें लाभकारक बनती हैं बिना भाग्य (पुण्य) के यह कोई भी कार्यसाधक नहीं बनते हैं।

ब्राह्मण ठाकुर साहब से पुरस्कार प्राप्त कर विदा हुआ और अपने घर आया। मतलब यह है कि अपना भाग्य अनुकूल हो तभी देव देवी भी प्रसन्न होकर देते हैं अन्यथा देव देवी के नाम से बहुत से मनुष्य ठगे जाते हैं वास्ते बुद्धिमानों को प्रत्येक कार्य सोच विचार करके करना चाहिये।

प्रकरण ८ वाँ

मन की भ्रमणा

सती कहती है कि हे पुत्र! पतिदेव का रुख देख कर मैं भी चुप हो गई और आनन्द पूर्वक अपना गृहकार्य और तेरा पालन प्रेम पूर्वक करने लगी इस बात को कुछ समय बीत गया। तू करीब दो वर्ष का होने आया उस समय मेरी असावधानी से और तेरे वेदनीय कर्म का उदय काल आने से तू बीमार होगया तब बहुत औषधोपचार किया परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। तेने स्तनपान भी करना छोड दिया और आक्रन्दन करने लगा तेरी यह दशा मुझ से देखी न गई मैं बहुत चिन्ता करने लगी। उस समय पूर्व की बोलमा की बात फिर याद आयी इससे कुछ भी विशेष विचार न करती हुई तेरे पिताजी के समक्ष ही मैंने कहा कि "हे अम्बिका माता यदि तेने कोप किया हो तो कृपया वापिस खींच लेना मैंने तेरे दर्शन इस बालक को कराने की बोलमा की थी परन्तु मैं वसा न कर सकी इससे रुष्ट होकर तेने यह पीडा की हो तो क्षमा करो अब मैं फिर यह बोलमा करती हूँ कि इस बालक की पीडा दूर हो जावेगी तो स्वस्थ होने पर बालक को पैदल यात्रा से तेरे स्थान मे लाकर दर्शन कराने के बाद ही मैं

नैवाकृतिः फलति नैव कुल न शील,
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा ॥
भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सचितानि,
काले फलन्ति पुरुपस्य यथैव वृक्षाः ॥

—भर्तृहरि नीति शतक

भावार्थ—न तो मनुष्य की आकृति फलती है न कुल न शील न विद्या न सेवा। केवल पूर्व संचित किये हुए "तप के फल स्वरूप" भाग्य ही पुरुप को समय २ पर अपना शुभ फल देते हैं अर्थात् भाग्य के साथ ही उपरोक्त सब बातें लाभकारक बनती हैं बिना भाग्य (पुण्य) के यह कोई भी कार्यसाधक नहीं बनते हैं।

ब्राह्मण ठाकुर साहब से पुरस्कार प्राप्त कर विदा हुआ और अपने घर आया। मतलब यह है कि अपना भाग्य अनुकूल हो तभी देव देवी भी प्रसन्न होकर देते हैं अन्यथा देव देवी के नाम से बहुत से मनुष्य ठगे जाते हैं वास्ते बुद्धिमानों को प्रत्येक कार्य सोच विचार करके करना चाहिये।

र्हो सिर्फ पश्चात्ताप ही उसके लिए अवशेष रह जाता है। कवि ठीक ही कहता है कि "नाभाव्य भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाश कुत" अर्थात् जो नहीं बनने वाला है वह प्रयत्न करने से बन नहीं सकता और जो बनने वाला है उसका नाश कैसे हो सकता है वह बन कर ही रहेगा फिर भी मनुष्य के लिये उचित यह है कि प्रत्येक कार्य सोच समझ कर करे।

खान पान मौज शौक आदि इस घर में करूंगी" दूसरी त
इलाज उपाय भी चालू थे इससे दो दिन बाद तुझे शान्ति
गई पीड़ा मिट गई और तू पूर्ववत् आनन्द से रमने खेलने ल
गया। तब तो मैंने स्त्री स्वभाव सुलभ तेरे पिताजी के पास ह
पकड़ी देवी के दर्शनार्थ जाने का निश्चय किया और तैयारी भ
प्रारम्भ कर दी।

पतिदेव को लम्बी और मुसीबत वाली पैदल यात्रा इन
से असह्य थी किन्तु मेरी हठ के आगे लाचार होकर मजूर करने
के सिवाय अन्य मार्ग ही नहीं था। उस समय वसन्त ऋतु पूर्ण
होकर ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ हुआ था इससे ज्यादा सामान
असबाब लेने की आवश्यकता नहीं रहती थी। पिछली रात का
ठण्डा २ पवन चलने से मनुष्य को बड़ी मीठी २ निद्रा आती है
कोई काम करने की इच्छा नहीं होती निद्रा में ही सब सुख मालूम
होता है; परन्तु हम उसमें न लुभाये और भोर होने से प्रथम
पिछली रात्रि में हम दोनों पति-पत्नी आवश्यक सामान लेकर
तुझे साथ लिये हुए घर से निकल पड़े। पति ने आवश्यक सामान
उठाया और मैंने तुझे गोदी में लिया। शीघ्र ही शहर के रास्तों को
पार करके शहर के बाहर आकर अम्बिका माता के स्थान का
जगल का रास्ता लिया। मनुष्य जब किसी आवेश में आकर हठ
पूर्वक उस कार्य में लग जाता है तब उसकी विवेक बुद्धि और
विचार शक्ति सब अदृश्य हो जाती है उसे उस समय वही दिखता
है दूसरी तरफ निगाह भी नहीं दौड़ाता। न विचार ही करता है।
जब उस कार्य का परिणाम सामने आता है तब उसकी आंख
खुलती है और वह पश्चात्ताप करता है परन्तु उससे होता कुछ

अब तो तृषा बहुत पीडा दे रही है इस विरान जगल का अन्त कब आवेगा ? जीवन को टिकाये रखने वाला जल कहा और कब मिलेगा अब तो चला नही जाता। तेरे पिताजी भी तृषातुर हो रहे थे केवल मुझे अधिक पीडित नही बनाने के लिहाज से चले जा रहे थे उन्होने मुझे धैर्य दिया और प्रवास चालू रखा। किसी रोज घर से बाहर पैर नही रखा था और उघाडे पाव न चली वैसी कोमलागी को वह समय कैसा भयकर लगे किन्तु दोष किसका ? मैं विचार करने लगी कि यह मुसाफरी का दुख मैंने ही हठ कर के अपने आप उपार्जन किया है और पतिदेव को भी घोर कष्ट मे मैंने ही डाला है अन्यथा इनको कष्ट क्यो उठाना पडे। मैं भी पर-वस चुपचाप चली जा रही थी किन्तु धैर्य की भी सीमा होती है। सूर्य मध्यान्ह में मस्तक पर आवे तब तक तो स्थिति भयकर और खतरनाक बन गयी। अब तो एक कदम भी चलना कठिन हो गया आखिर दीन बदन होकर मैं बोली स्वामिन् अब तो एक कदम भी नहीं चला जाता जो कदाचित् इस भयकर गरमी मे शरीर लथड गया तो इस बालक की क्या दशा होगी ? अब तो कहीं विश्राम लेकर तृषा को शान्त किये बिना चैन नहीं पडता। तेरे पिताजी ने भी अपनी हालत पर से मेरा अनुमान कर लिया और चौफेर दृष्टि पसार कर कहा देखो यह थोडी दूरी पर वटवृक्ष दिखायी दे रहा हैं वहा तक धैर्य रखकर चलो तुम विश्राम करना मैं पानी की तलाश करके ले आऊँगा। आखिर वह वटवृक्ष हमारा लक्ष्य बना और हम उस तरफ चले उस समय भूमि भी आग बबूला बन चुकी थी चारो दिशा से गरम वायु हमारा धैर्य हरण कर रहा था इस समय कन्धे पर रहा हुआ तू भी घबरा रहा था। तेरी याद आते ही मेरे अग में कपकपी पैदा हो गई कि गुलाब के

प्रकरण ६ वाँ

मुसीबत का पहाड़
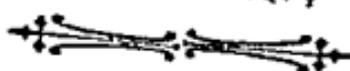
ग्रीष्म ऋतु में प्रातः काल का समय बडा ही सुहावना होता है। उस समय चलती हुई ठण्डी ठण्डी हवा पथिकों को प्रमोद एव उल्लास देती है, उनमे उत्साह का सचार करती है परन्तु वह आनन्द और वह उल्लास अधिक समय तक टिकता नहीं। सूर्योदय होने पर उसकी तेजी बढी कि वह सुखद ठण्डक लुप्त हो जाती है उसकी जगह गरम गरम हवा की लपटें प्रारम्भ होने लग जाती हैं और घबराहट पैदा कर देती हैं।

वत्स ! तेरे पिताजी के साथ तुझे लिये हुए मैं चली जा रही थी। ज्यो २ सूर्य की तेजी बढती गई त्यो ही प्यास व घबराहट भी बढती जाने लगी मुह का अभी भी सूखता जा रहा था रास्ते के थाक से ग्लानि बढकर चेहरा म्लान बनता जा रहा था फिर भी हौस के मारे चले जा रहे थे। चलते २ एक पगदण्डी दिखायी दी उसे नजदीक का रास्ता समझ कर हम उस तरफ आगे बढ गये परन्तु थोडी दूर जाने पर झाड आदि वृक्षावली भी दिखाई नहीं दी और मार्ग विषम बन गया। घबराहट और बढी प्यास भी जोर से लगी तब मुझ से न रहा गया और मैं, कहने लगी—नाथ

अय कर्म ! कहा विजया नगरी रही कहाँ यह वेरान जगल क्यो आये और कैसी स्थिति हुई ! तेरी भी अजब लीला है तू पल भर में राजा को रक और रक को श्रीमन्त बना देता है दुखी को सुखी और सुखी को दुख के दरिये में धकेल देता है। मेरी भी यही दशा हो रही है यदि इस भयानक जगल में इन्हें बेसुध हालत में छोड कर जाता हूँ तो जगली जानवरो से कौन इनकी रक्षा करेगा और नहीं जाता हूँ तो पानी के विना इनके प्राण रहना कठिन हो जावेगा इस चिन्ता से जिसका हृदय आहत हो रहा है वह तेरे पिता मजबूर होकर अपन दोनो को जगल में छोड कर पानी की शोध में दौड पडे। आगे २ दौडते जाते हैं और पीछे २ अपनी तरफ देखते जाते हैं इस तरह थोडी दूर जाने पर वह देखना भी बन्द हुआ और वे आगे निकल चले। यह बात भी स्पष्ट है कि जो जहा से परिचित होता है वह शीघ्र ही पता लगा लेता है परन्तु अपरिचित व्यक्ति को कठिनाई होती है इससे वे दूर तक निकल गये परन्तु पानी हाथ नहीं लगा वे आगे बढते ही गये।

पीछे से वटवृक्ष की शीतल छाया में ठण्डे पवन की लहरें आने से मेरी मूर्च्छा दूर हुई सुध आते ही मैं बैठी हो गई और नजर दौडाकर देखती हूँ तो तेरे पिताजी कहीं भी दिखाई नहीं दिये। तब मैं घबराई और एक दीर्घ नि श्वास डाल कर कहने लगी कि हे प्राणाधार इस निर्जन वन में छोडकर कहाँ चले गये परन्तु याद आयी कि मेरी यह दशा देखकर पानी लाने दौड पडे होंगे। इतने में तेरी तरफ मेरी नजर पडी तो बिना जल की मच्छी की तरह तू तडफता दिखाई दिया यह देख मेरा मातृ प्रेम एकदम

फूल जैसे इस सुकुमार बालक की क्या दशा हो रही होगी य
कुसुम खिलने से पहले ही कुम्हला गया तो मेरी क्या दशा होग
इत्यादि विचारों से में हिम्मत कर के जल्दी जल्दी लक्ष्य स्थान के
तरफ चली परन्तु उस वटवृक्ष के नीचे छाय के नजदीक पहुँचूं इतन
मे भी मेरे धैर्य का अन्त आकर एक कारमी चीस मुंह से निक
पडी और में बेभान होकर भूमि पर गिर पड़ी इतने में तो त
पिताजी ने मेरी यह दशा देखकर एक दम मेरे पड़ते पड़ते मु
अधर झेल लिया और तुझे बचा लिया। पास ही वटवृक्ष
छाया गहरी और ठण्डक भी अच्छी थी वहा जमीन साफ कर
पहले तो एक रूमाल बिछाकर तुझे सुला दिया पश्चात् पास
ही बेभान हालत में पडी हुई मुझे महान् प्रयत्न से उठाकर
छाया में सुलाई और पवनादि से शीतलोपचार करने लगे
कुछ समय तक प्रयत्न करने पर भी मुझे सुध न आयी तब उन्हें
सोचा कि यदि पानी नहीं मिला तो इसके प्राण बचना कठिन
जायगा इसलिए मुझको कही से तलाश करके पानी लाना चा
यह विचार कर तेरे पिताजी, उठे और हम दोनों को छोड़
जाते जाते बोले।

सोरठा

सोती सुन्दर सेज घर बिछा कर गादियें,
पड़ी भूतल पर आज वेलां हुई, विसमी घणी।
कोमल जिसकी देह, चरण पुष्प की पांखड़ी,
रूप अनुपम एह जाता न चाहे दिलड़ो।
आयो आपत्तिकाल सुत प्रिया वन छोड़ कर,
जाऊँ पाणी काज प्रभु तुम्हारे सहारे ॥ १ ॥

प्रकरण १० वाँ

मलिन—भावना
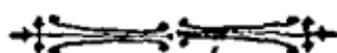
पुत्र ! मैं जगल मे वटवृक्ष के नीचे अकेली बैठी हुई अनेक प्रकार के विचारों में गोते लगा रही थी इस समय मैं उत्तर दिशा तरफ धूल के गोटे उडते हुए देखकर विस्मित हो उठी और विचार करने लगी कि क्या बात है कौन आ रहा है। स्वल्प समय मे ही एक घोडा पूरपाट दौडता हुआ सवार दिखाई दिया और वह भी उस वृक्ष के नीचे आकर विश्रान्ति लेने लगा मैं एक अनजान मनुष्य को देखकर घबराई। मुझे घबराती हुई असमजस में पडी हुई अकेली देखकर वह घुडसवार कहने लगा कि मैं यहा से नजदीक में रही हुई चन्द्रावती का राजा हू शिकारार्थ परिवार सहित अरण्य मे आया था वह कार्य करके वापिस अपने शहर को जा रहा था। मेरा साथी लश्कर दूसरे रास्ते होकर निकल गया मैं इस रास्ते निकल आया। वहा खडे हुए राजा ने मुझे देखी मेरे साथ मे उस समय कोई नहीं था इसलिये मेरा रूप और शरीर की सुन्दरता ने उसके हृदय मे विकृति पदा की मदन के वेग में परवश होकर मर्यादा को छोडता हुआ वह कहने लगा—

उमड़ पड़ा अपना दुख भूल कर तुझे उठाया और स्तन पान कराती हुई विचारने लगी —

मैंने मूर्खता वश यह क्या अनर्थ किया कुछ भी विचार नहीं किया कि ऐसी भयकर गर्मी की मौसम में ऐसी बोलमा करना और वह भी पैदल यात्रा करके पूरी किये बिना अन्न जल नहीं लेना तथा उसे पूरी करने की हठ पकड़ना ऐसी स्त्री स्वभाव सुलभ मूर्खता करके मैंने भयकर भूल की है मेरी मूर्खता के कारण ही पतिदेव के, मेरे और इस कोमल बालक के प्राण सकट में पड़ गये हैं पतिदेव मुझ पर दया करके जल की खोज में गये है परन्तु उन्हें क्या कष्ट नहीं होता होगा।

अब मैं क्या करू ? उन्हे गये; समय भी बहुत हो गया है न मालूम उनकी क्या हालत हुई होगी ? मैं कहा जाऊ और कहां शोधू ! यह भयानक जगल है यदि कोई भयानक जगली जानवर आगया तो मेरी और इस बालक की रक्षा कैसे करू गी यदि कोई दुर्जन दुष्ट तस्कर या व्यभिचारी मनुष्य आ गया तो मेरे इस दिव्य रूपधारी शरीर को कहा छिपाऊगी तथा मेरे शील धर्म की रक्षा कैसे करू गी ? इस प्रकार हे पुत्र मैं अपनी मूर्खतावश पश्चाताप कर रही थी।

किसी काम को बिना विचारे कर लेना या मान्यता बोलमा कर लेना सरल बात है परन्तु जब उसके अनुसार प्रवृति करनी पड़ती है तब अनुभव होता है कि मैंने बहुत बुरा किया। मैं भी पश्चाताप कर रही थी और यह आशा लगाय बैठी हुई थी कि पतिदेव जल लेकर आते होंगे इतने मे उत्तर दिशा तरफ धूल के गोट के गोट उड़ते दिखाई दिये।

भी हो जावें परन्तु सती स्त्री अपना शील धर्म कभी नहीं त्यागती मैं भी आपके राज्य और सुखोपभोग के लालच मे आकर अपना शील धर्म त्यागने वाली नहीं हूँ मेरे सतीत्व के आगे इन्द्रासन को भी तृण समान तुच्छ मानती हूँ अत आपको ऐसी अनुचित बात कहना उचित नहीं है। जो सत्ताधीश होकर इस प्रकार अधर्माचरण करने को तत्पर हो जाते हैं वह अपने पाप से बहुतों को ले डूबते हैं अत आपके मन की विकलता को शुद्ध करके मलिन भावना को दूर कीजिये और प्रजा की सर्व स्त्रियो को बहन एव पुत्री तुल्य मान कर उनके रक्षक बनो इसी मे आप नरेशो का कल्याण है। किमाधिक्यम् ?

अय कोमलांगी बाला तू साक्षात् इन्द्राणी जैसी रूप पुञ्ज और हृदय को लुभाने वाली इस भयंकर जंगल में अकेली क्यों बैठी है ? तू मानुषी है या वनदेवी है तेरा आरक्षक कौन है सो कह और मुझ से मत घबरा। मैं यहां से नजदीक रही हुई चन्द्रावती का राजा हूँ। तू मेरे साथ चल। मैं तुझे बड़े प्रेम से रखूंगा और सब रानियों में पटरानी बना कर तेरा सम्मान बढ़ाऊंगा और श्रेष्ठ महलों में रखूंगा। तेरा परिचय न होने पर भी तेरा चेहरा यह बता रहा है कि तू किसी श्रेष्ठ कुल में जन्मी हुई पद्मिनी है इस जंगल में अनेक प्रकार के भय हैं। तेरे साथ कोई दिखायी भी नहीं देता इसलिए यहां ठहरना उचित नहीं। मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ और तुझे हृदय से चाहता हूँ इसलिए मेरे साथ चल वहां हजारों दास दासी तथा दूसरी सब रानियां तेरी हाजरी में रहेंगी वहां सोने के लिए सुख शय्या रहने के लिए राज्य महल फिरने के लिए गाड़ी घोड़े और खाने को नित्य नये पकवान मिलेंगे और मैं स्वयं तेरे आधीन बन कर रहूँगा इसलिए उठ और मेरे साथ चल।

राजा के उपरोक्त आमंत्रण सूचक वाक्य सुनकर मैंने उनसे कहा कि—राजा! तुम मर्यादा पुरुषोत्तम होते हुए कामातुर होकर क्या बोल रहे हो और क्यों भान भूल रहे हो? अपना आपा सम्भालो। मेरे स्वामी मध्यान्ह की भयंकर गर्मी में विश्रान्ति लेने को बैठाकर जल की शोध में गये हैं सो जल लेकर आते ही होंगे मैं कोई अनाथ नहीं परन्तु सनाथ हूँ तथा उत्तम खानदान की स्त्री हूँ पर पुरुषों को बन्धु व पिता तुल्य मानती हूँ इसलिए हे नरेन्द्र कदाचित् समुद्र मर्यादा त्याग दे, प्रलय काल का पवन मेरु को डिगा दे, सूर्य से अंधेरा हो जाय चन्द्र से अग्नि झरने लगे यह बातें न होने लायक

क न सुनते हुए घोडे को दौडाता हुआ मुझे भी अपने शहर तरफ
चला उसे यह भी भय था कि कहीं इसका पति आ गया तो
री मुराद यों ही रह जायगी। मैं इसे नहीं ले जा सकूँगा। इस-
लये तू पास में सोया हुआ था जिसकी भी दरकार न करते हुए
मुझे यहीं छोडकर रोती चिल्लाती हुई मुझे ले गया। वहा जगल मे
री कौन सुनने वाला था? जहा स्वार्थ और काम ये दो सवार हो
ाते हैं वहा मनुष्य उचितानुचित कुछ भी नहीं देखता।

मेरे पति और पुत्र दोनों छूट जाने से मुझे अपार दुख हो
रहा था और मैं आर्तस्वर में रुदन करती थी परन्तु उस निर्जन
न में सुनने वाला कौन था? जहा स्वय पृथ्वी पति (राजा) ही
नैन्य बनकर लुटेरा डाकू बन जाय वहा पुकार किसके आगे की
ाये? रुदन करते २ मेरा कठ बैठ गया। दिनकर से भी मेरा दुख
ा देखा गया जिसमे वह भी छिपने की तैयारी करने लगा उस
समय थोडी दूरी पर एक किला जैसा दिखाई दिया। रोशनी चौत-
रफ चमक रही थी। राजा अश्वारूढ हुआ मुझे लेकर अपने शहर
ा प्रवेश करता है। मैं रास्ते मे मिलने वालों से मुझे मुक्त कराने की
करुणा, दुख व आग्रहभरी विनति करती जाती थी परन्तु किसी
की हिम्मत राजा को कहने की नहीं पडी। वे मन ही मन राजा के
अन्याय को धिक्कारते थे। सायकाल पूर्ण होते २ राजा मुझ को
लिये हुए राज्य महल के चौगान मे दाखिल हुआ। घोडे की लगाम
ामकर खडा रखा और घोडे पर से उतर पडा। उनके हजुरियों ने
मुझे भी घोडे पर से उतार कर राज्य महल के भव्य दिवानखाने
में दाखिल कर दी। मैंने मुक्त करने के लिये वहुत आजीजी की
रतु सब व्यर्थ हुई। हे लाल, इस तरह तेरा वियोग हुआ, तेरे लिए
रे हृदय में जो आशाएँ व भावनाएं थी वे सब ज्यों की त्यों रह

प्रकरण ११ वाँ

अपहरण और पुत्र विछोह

शम्भुस्वयम्भूहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाऽक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ॥
वाचामगोचर चरित्रविचित्रताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ १ ॥

भावार्थ—जिसके वशीभूत होकर शम्भु (शिव) स्वयम्भू (ब्रह्मा) और हरि जैसे अवतारी पुरुष भी हरिण जैसे नयनों वाली स्त्रियों के आगे गृहकर्म करने को दास बन गये हैं जिसका वर्णन वाचा से परे व चरित्र विचित्र है ऐसे कुसुम के आयुध वाले भगवान कामदेव को मेरा नमस्कार है।

जिस कामदेव के आगे ऐसे २ अवतारी महापुरुष भी झुक गये हैं और परास्त होकर अपनी हार मान गये हैं वहाँ एक साधारण मानवी की क्या ताकत है जो सामने टिक सके ? मेरे बहुत समझाने पर भी वह पराजित भूपति घोड़े से नीचे उतर कर मुझे पकड़ के बलात् घोड़े पर डालकर आप भी सवार हो वहा से चल दिया। उस समय मैंने मुक्त होने के बहुत प्रयत्न किये परन्तु मेरी

प्रकरण १२ वाँ

माता वेश्या-घर में कैसे ?
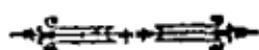
हंसराज को रुदन करता हुआ देखकर सती उसे कहने लगी—हे पुत्र ! मेरे जीवन के आधार ! अब शान्त रह तेने जो पहले विषय पूर्ण प्रार्थना की थी वह अज्ञता के कारण थी इसलिये क्षम्य है। अत हृदय को मजबूत करके इस चिन्ता को छोड।

अखिल ब्रह्माण्ड में भव भ्रमण करते हुए इस आत्मा ने प्रत्येक जीव के साथ एक दो बार नहीं अनेक बार सम विषम सम्बन्ध किये हैं और विधि की विचित्रता से ऐसे २ विषम सयोगों में गुजरना पडता है जिसकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। कुबेरदत्त एव कुबेरदत्ता की कथा जम्बू चरित्र में गायी जाती है जिसमें एक ही भव मे एक २ के साथ ६ छ नाता किये गये। यह बताकर मोहदशा का साक्षात् चित्र खडा कर दिया गया है इत्यादि बहुत समझाने पर हसराज जिसका दुस माता ने देव-दत्त नाम दिया था लज्जित होता हुआ उठकर माता के चरणों में गिर पडा और कहने लगा —

गई और बीच में ही यह बनाव बनने से अपन पृथक पृथक् हो गये। जिसको करीब तेरह वर्ष हो गये हैं। पश्चात तेरा जो हुआ सो तेने उन तेरे पालक माता पिता से जानकर कहा ही है कि बनजारा आया उसने तुझे उठाया और तेरा पालन पोपण हुआ।

आज तेरह वर्ष बाद तेरा दीदार देखने को मिला परन्तु ऐसा अनिष्ट प्रसंग लेकर तू आया कि जो किसी भी तरह वान्छनीय नहीं कहा जाय। मेरे जीवन को धिक्कार है जो मेरे अगजात पुत्र की भी मेरे प्रति बुरी नजर दुर्देवने कराई पूर्व संस्कारों में न जाने क्या चमत्कार है जो हमें बचाने के निमित्तभूत हो गये। इतना कहने के साथ ही सती फिर रो पड़ी और उभय नयनों से अश्रुधारा बहाने लगी यह देखकर हसराज को भी यह खातरी हो गई कि यही मेरी जन्मदात्री सच्ची माता है।

उसी समय हसराज के हृदय में चिन्ता की भयंकर ज्वाला उत्पन्न हुई और वह अनेक कल्पनाओं की वेदी में बहलता हुआ मूर्छित होकर गिर पड़ा।

यह हालत देखकर सती एकदम घबराई और उसके पास जाकर अपनी साड़ी के अंचल से पवन डालती हुई उसे सुधि में लाने का प्रयत्न करने लगी कुछ समय में सुधि आते ही वह भी हृदय फाट रुदन करने लगा और आन्तरिक व्यथा पूर्ण हुए अज्ञात पाप की परमात्मा से बारम्बार क्षमा मांगने लगा कि प्रभो! अब मेरा उद्धार कैसे होगा मैं इस महापाप से किस तरह बचूंगा। मैं नहीं जानता था कि यह मेरी जन्मदात्री माता है इसी से मैंने यह दुःसाहस किया प्रभो! आप दयालु हैं मुझे क्षमा करना।

मेरी मूर्खता से घर छूटा सब पृथक पृथक हुए और मेरी ई दुर्दशा हुई। हे लाल! जब राजा मुझे महल के दिवानखाने दाखिल कराके गया उस समय पिंजरे में पुरायी हुई पखिनी की ह में उदास होकर विचारने लगी कि प्रभो! मेरे दो वर्ष के मल बालक की उस भयानक जगत में क्या दशा हुई होगी? पुत्र अपने पिता को मिला होगा कि नहीं? मेरे स्वामी उसको र कहा गये होंगे? मुझे न पाकर जगल मे उनकी क्या दशा होगी मुझे शोधने को कहा कहा भटके होंगे? पुत्र को कौन ालेगा? वह मेरी अनुपस्थिति मे किसे माता कहकर पुकारेगा? प्रकार की चिन्ताओं में मग्न हो रही थी और गले के हाथ ाकर दुख के दरिया मे गोते खा रही थी। सजे हुए महल की फ मेरी नजर भी नही थी। इतने में एक दासी ने आकर उस नोवस्था से जागृत की और मधुर स्वर में कहने लगी—बाई दय थकी हुई होगी, चलो स्नानादि से निपटलो सो थकावट दूर ी और शान्ति मिलेगी। यह सुनकर भी मुझे वह कुछ भी च्छा नही लगता था। मैं तो उसी चिन्ता में व्यस्त थी परन्तु के अत्याग्रह से उठकर स्नानादि किया। इतने में दूसरी दासियाँ जन का थाल लेकर आई और खाने के लिए आग्रह करने ा। परन्तु हे लाल मुझे तेरा और पति का स्मरण होते ही दोनो खों से अश्रुओं की धारा बह चली। अन्न देव को नमस्कार के दासियों से कहा कि बहनो आप थाल लेकर आयी हैं लेकिन जैसी निर्भागन को अभी तो किसी भी तरह यह अन्न गले उत- ा नहीं तुम वापिस ले जाओ। मुझे तो यह ठाठ देखकर अधिक द्रा होती है इसलिये मेरी नजर से दूर हटाओ। ऐसा कहती इतने में तो सीढियों की तरफ से खलबलाहट सुनायी दी। महा-

सोरठा

पवित्र मेरी मात, पृथ्वी तल पावन कियो,
सती गुणे विख्यात, कोड़ धन्य है आपको ॥
स्वर्ग मृत्यु पाताल, तीन भवन में मातजी,
तुम कीर्ति विख्यात, रहो हमेशा झलकती ॥ १ ॥

पूज्य मातेश्वरी ! इस विशाल विश्व में दृष्टि दौड़ाते हुए कहां तो आपकी निर्मल पवित्रता और कहा मेरी अधमता ! अब मेरा कैसे उद्धार होगा ? परमात्मा से क्षमा मागते हुए भी मुझे लज्जा होती है। परन्तु मुझे एक और भी वितर्क हो रहा है सो कृपा कर यह बतलाइये कि आप उस राजा के यहां से निकलकर इस वेश्या मन्दिर में कैसे प्रविष्ट हुई ? तथा मेरे पिताश्री का क्या हाल हुआ होगा और वे कहां हैं ? मैं पूरी तरह स्थिति जानना चाहता हूँ।

अपने पुत्र का यह कथन सुनकर नि श्वास डालती हुई सती कहने लगी प्रिय पुत्र ! मेरी बीती वार्ता में क्या कहूँ ? यह घटना याद आते ही आत्मा में गहरी वेदना होती है चित्त विह्वल हो उठता है दुख का दरिया उमड़ आता है। जैसी मैंने स्त्री स्वभाव सुलभ बिना सोचे विचारे आवेश में आकर चोंजसो की वैसा ही नतीजा पाया है कहा है कि —

बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताय ॥
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय ॥

प्रकरण १३ वाँ

युक्ति पूर्वक स्वरक्षण

राजा को कामान्ध दशा मे यद्वा तद्वा बोलता हुआ देख कर पहले तो मैंने शिष्ट भाषा मे उसे बहुत समझाने का प्रयत्न किया और कहा कि राजन् मुझे तुम्हारे इन महल, आभूषण एव सुख समृद्धि की परवाह नहीं है न मैं इनसे ललचा ही सकती हूँ मुझे तो मेरे शील धर्म की रक्षा अभीष्ट है सो चाहे कितना भी संकट क्यों न आवे उसका मैं हृदय पूर्वक हँसते हुए स्वागत करु गी परन्तु आप की इन बातों में फसकर अपना शील धर्म नष्ट न होने दूगी।

इतना सत्य सुनाते हुए भी जिसका पराभव कामदेव के आगे हो चुका है उसे धैर्य कहा, और वह मेरी बात क्यों सुनने लगा? महाराजा मेरा हाथ पकडने को आता है। यह देख मैंने कुछ दूर खिसककर मुक्त करने की बहुत ही चेष्टा की परन्तु वह सब व्यर्थ हुई। राजा गुस्से होकर कहने लगा कि याद रखना मेरा वचन नही मानकर कहा जा सकती है? मैं देख लेता हूँ तब मैंने सोचा कि मेरी मदद पर आने वाला यहा कोई नही है और यह बलात्कार कर गुजरेगा अत उत्तम तो यह है कि कोई युक्ति

राजा चन्द्रानन स्वयं आकर कहने लगा कि अय सुन्दरी ! यह भव्य दिवानखाना, यह रेशमी गादी तकिये और यह आश्चर्यकारी सजावट देखकर तेरी उदासीनता टली होगी अब इस मन की मा मिनी बनने का मुहूर्त कब का रखना ? हे वल्लभे ! इस साग वाले कपाट (अलमारी) में रखे हुए वस्त्र भूषण तुम्हारे अंग पर धारण कराने की मेरी इच्छा है जिसे पूर्ण करो और अनुमति दो।

कामी मनुष्य विवेकशून्य हो जाता है। उसमें उचिता नुचित वाक्य बोलने का विवेक नहीं रहता है। वह नहीं धारने बोलने योग्य वाक्य भी बोल जाता है। इसी तरह राजा भी काम का पीडा हुआ यद्वा तद्वा बोल रहा था और मुझे पाप में फसाने की चेष्टा कर रहा था। कवि ने ठीक ही कहा है—

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु ॥
विना मे मृगशावाक्ष्याः तमोभूतमयं जगत् ॥
(भर्तृहरि शृंगार शतक)

भावार्थ—एक काम से पीडित मनुष्य कहता है कि इस संसार में प्रकाशक पदार्थ दीपक अग्नि तारा नक्षत्र सूर्य और चन्द्र सब विद्यमान होते हुए भी मेरी मृगाक्षी के बिना सारा संसार मुझे अन्धकारमय लगता है।

राजा भी इस प्रकार पराधीन बना हुआ मेरे सामने खड़ा है और अपना पाँसा फेंक रहा है परन्तु मुझे अपना धर्म ही अभीष्ट है। मैं उसके लालच में आना नहीं चाहती तथापि परा धीन बनी हुई थी इसलिये मैं भी यह सोच रही थी कि किस प्रकार अपने शील धर्म को बचाना।

प्रकरण १३ वां

युक्ति पूर्वक स्वरक्षण

राजा को कामान्ध दशा मे यद्वा तद्वा बोलता हुआ देख कर पहले तो मैने शिष्ट भाषा मे उसे बहुत समझाने का प्रयत्न किया और कहा कि राजन् मुझे तुम्हारे इन महल, आभूषण एव सुख समृद्धि की परवाह नहीं है न मैं इनसे ललचा ही सकती हूँ मुझे तो मेरे शील धर्म की रक्षा अभीष्ट है सो चाहे कितना भी सकट क्यों न आवे उसका मैं हृदय पूर्वक हँसते हुए स्वागत करूगी परन्तु आप की इन बातो मे फसकर अपना शील धर्म नष्ट न होने दूगी।

इतना सत्य सुनाते हुए भी जिसका पराभव कामदेव के आगे हो चुका है उसे धैर्य कहा, और वह मरी बात क्यों सुनने लगा? महाराजा मेरा हाथ पकडने को आता है। यह देख मैंने कुछ दूर खिसककर मुक्त करने की बहुत ही चेष्टा की परन्तु वह सब व्यर्थ हुई। राजा गुस्से होकर कहने लगा कि याद रखना मेरा वचन नही मानकर कहा जा सकती है? मैं देख लेता हूँ तब मैने सोचा कि मेरी मदद पर आने वाला यहा कोई नही है और यह बलात्कार कर गुजरेगा अत उत्तम तो यह है कि कोई युक्ति

द्वारा यह समय टाल दिया जाय। यह विचार करके मैं हास जैसा दिखाव करती हुई कहने लगी कि वाह, राजेन्द्र वाह! राज्य भी इसी तरह चलाते होओगे। मुझे तो आश्चर्य यह होता है कि धैर्य के अभाव में राज्य कैसे चलता होगा?

यह सुनकर राजा कुछ लज्जित होने लगा। यह अवसर उपयुक्त देख कर मैंने कहा कि राजेन्द्र! मैंने अपनी कुल देवी के यह मान्यता की है कि जहां तक मेरे पति तथा पुत्र का पता न लगे वहां तक मैं किसी भी पुरुष का स्पर्श न करूंगी अतः मुझे एक वर्ष की अवधि दीजिये। इतने में भी पता नहीं लगेगा तो मैं कहां जाने वाली हूँ? आपके कब्जे में ही हूँ। इतने में मेरी मान्यता पूर्ण हो जावेगी। इस उपरान्त भी आप नहीं मानेंगे और बलात्कार करेंगे तो मैं अपघात करके अपने प्राण दे दूंगी किन्तु भेंट करूंगी नहीं।

यह सुनकर राजा सोचने लगा कि आखिर जिसके साथ जिन्दगी सुख चैन से बितानी है प्रीति करनी है उससे प्रसन्नता पूर्वक ही आनन्द रस ले सकूंगा अन्यथा यह उत्तम नारी रत्न गुमा बैठूंगा क्योंकि आवेश में आकर अनर्थ कर बैठेगी तो मेरी बदनामी होगी। यह विचार कर उसने मेरी मांगी हुई अवधि स्वीकार की और कहा कि जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो मैं तुम्हारे लिये जितना भी द्रव्य चाहिये उतना प्रसन्न चित्त देता हूँ। सुख से रहो परन्तु अवधि के उपरान्त फिर मानूंगा नहीं। यह कहता हुआ राजा वापिस लौट गया। मैंने भी धैर्य धारण कर राजवाड़े के चौक में दानशाला खोलकर दान देना और विदेशियों को सन्तोष देना प्रारम्भ किया तथा चारों दिशाओं

के द्वार पर मनुष्यो को रख दिये कि कोई विदेशी आवे उसे यहा लावे। ऐसा करने का मेरा उद्देश्य यह था कि पति का पता मिल जावे तो उनके साथ युक्ति द्वारा यहा से छुटकारा पाऊ नहीं तो प्राण त्याग कर शील की रक्षा करू। यही मेरा अन्तिम ध्येय था।

काल का स्वभाव बीतने का है और दूर दिखती हुई अवधि को सन्निकट लाने का है। तदनुसार राजा की दी हुई एक वर्ष की अवधि भी पूर्ण होने आई परन्तु पति देव का पता न मिलने से मेरा धैर्य छूटता जाता था।

उधर तेरे पिता ब्रह्मदत्त जिनका नाम है अपनी पत्नी एव पुत्र को वटवृक्ष के नीचे छोडकर जल की शोध मे गये थे। वे कुछ समय बाद जल लेकर वापिस आये तब देखते है तो न पत्नी न पुत्र ही। यह देखते ही बेभान होकर गिर पडे परन्तु उस समय उनको थामने या धैर्य देने वाला था नही सो सावचेत करे। यह कार्य भी प्रकृति को ही करना पडा। कुछ समय पडे रहने के बाद शीतल समीर की लहरियो से सुधि मे आते ही हृदय द्रावक रूदन करने लगे और आसपास के स्थानों को ढूढने लगे। बहुत स्थान ढूढडाले परन्तु दोनो में से एक का भी पता न लगा। तब निराश होकर विचारने लगे कि मेरी कान्ता को इस वन में कोई अपहरण करके ले गया अथवा वह किसी जगली जानवर की शिकार बनी है। मैं किसे जाकर पूछूँ ? इधर उधर भटकते २ दिन पूर्ण होकर रात्रि पड़ी। अनेक प्रकार के जगली जानवरो की आवाज हृदय को परिताप उपजाती थी तथा पुत्र एव पत्नी के विरह मे वह रात्रि वर्ष जैसी दीर्घ बन गई। जरा भी नींद न

आयी। ज्यों त्योंकर रात्रि पूर्ण कर प्रात काल होते ही प्रिय पुत्र की शोध में आगे चले। कई दिनों तक बहुत सी शोध की परन्तु कहीं से कोई पता नहीं लगा। इस तरह महीने बीत गये शरीर की बेपरवाही से उनका भी रंग रूप गया। धूलिधूसर बने हुए चिन्ता और खाने पीने की शरीर क्षीण हो गया हैं कपडे फट गये हैं ऐसे वे अन्त में चन्द्रा के मार्ग पर आ चढे। जंगल को पार करके चन्द्रावती पर आ गये। आज राजा की दी हुई अवधि का अन्तिम दिन में चिन्ता से समय बिताती हुई मृत्यु की घडियाँ गिन रही राज महल के झरोखे में बैठी हुई दूर दूर तक दृष्टि दौड़ा रही और अतिथियों की प्रतीक्षा कर रही थी।

मध्यान्ह का समय है। सूर्य की उष्णता से भूमि तप हैं। मनुष्य एवं पशु पक्षियों का आवागमन मार्ग पर कम हो रहा है। ऐसे भयंकर गर्मी के समय एक मुसाफिर बहुत से आता हुआ दृष्टिगत हुआ। परन्तु दूर ज्यादा होने से पहचाना नहीं जाता था। नजदीक आने पर उसके चलन का तथा शरीर के दिखाव पर से आशा के अंकुर दिखाई देने और विश्वास हुआ कि आगन्तुक अन्य कोई नहीं परन्तु प्राणनाथ ही हैं। तत्काल मेरा हृदय आनन्द से विभोर बन गया परन्तु पुत्र साथ में नहीं देखकर अत्यन्त खेद भी हुआ। पास बुलाकर सुख दुख की बात करने की इच्छा हुई परन्तु ऐसा करने पर राजा को शंका पड गई तो काम बिगड जायगा सोचकर युक्ति से मोघा लेने को बुलाये। फिर भी कोई बातचीत न करते हुए पर द्वारा ही अपनी स्थिति से परिचित करते

ार करके आगन्तुक को द्वार पर विश्रान्ति लेने का कहलाकर
हल में गई और दिल को मजबूत कर एक पत्र लिखा और
नाश्ता की पुडिया में बाँधकर सीधा सामान के साथ पति
के पास भिजवा दिया। ब्राह्मण अज्ञात अवस्था में रानी का
ार मानता हुआ वहा से चल दिया।

कुछ दूर जाकर भूख अधिक लगने से रसोई बनाने की
ल में न पडते हुए एकान्त स्थान में आकर नाश्ता करने को
पुडिया खोली। पुडिया खोलते ही नाश्ता के साथ वह पत्र
ाई दिया। पत्र को देखते ही अपनी प्रिया जैसे अक्षरो को पह-
कर पुलकित होता हुआ नाश्ता करना छोड पहले पत्र पढने
। जिसमें लिखा था —

प्राणेश,

कदाचित् आये हुए सकट की अवधि पूर्ण होने आयी
और दोनो का पुन मिलन विधि ने निर्माण किया होगा तो मै
ना हृदय खोलकर सुख दुख की बीतक वार्ता साक्षात् ही
ी। पत्र में क्या लिखू ? मनुष्य मात्र मनसूबे के महल बनाता
मिलना कर्माधीन है। क्यो कि मैं पराधीन हूँ। मेरी आपको
। इतनी ही सूचना है कि इस शहर से बाहर पूर्व दिशा में
ी ही दूरी पर एक जीर्ण शिवालय है वहा आप रात्रि में विश्राम
। मैं राजा के मकट जाल से छूटकर वहाँ आनेका विचार
ी हूँ कदाचित् दैव योग से मुक्त न हो सकी तो मेरे शील रत्न
ा के खातिर प्राणो का बलिदान भी देना पडे ऐसी हालत
ारा अन्तिम प्रणाम मानकर सतोष करना।

आपकी दुखी सेविका

पत्र को पढते ही अपनी पत्नी की हृदय वेधक स्थिति जान कर उनका हृदय पिघल गया और दोनों नयनों मे अविरल अश्रु धारा बह चली। कुछ क्षण खाली होने से विचारने लगा कि मेरी प्रिया कुशल होने के साथ ही पराधीन होते हुए भी पवित्र रही है तथा आज रात्रि मे मुझ से मिलने के प्रयत्न मे है। इस आशा से अपने आपे को सभालता हुआ मन ही मन कहता है प्रिये धन्य है तेरे धैर्य को। धन्य तेरे चातुर्य को और धन्य है तेरी पवित्रता को। जो राज्य भवन में पहुँच कर भी पवित्रता कायम रखी है और राजा के लालच भरे आमत्रण को ठुकरा कर मुझ सरीखे भिक्षुक वृत्ति वाले को पति रूप में भज रही है और प्राणांत कष्ट उठा कर भी अपना गौरवमय शील धर्म कायम रखना चाहती है। ऐसी साध्वी स्त्री को पाकर मैं अवश्य ही कृतकृत्य हुआ हूँ। आह! पृथ्वी को पावन करने वाली स्त्रियाँ हों तो ऐसी हों। इस प्रकार वह आनन्द विभोर बना हुआ अपनी प्रिया का भेजा हुआ नाश्ता करने लगा।

प्रकरण १४ वाँ.

कामान्ध का सर्वनाश और मेरा छुटकारा
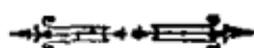
सती कहती है कि हे पुत्र ! पति देव को सीख देकर विदा करने के बाद कुछ समय तक तो झरोखे की खिड़की में से उन्हें देखती रही। जब वे दृष्टि से बाहर हुए तब मैं अश्रुप्लावित नयन कर भवन के मध्य में आकर एक पर्यंक के पास बैठकर विचार करने लगी कि जिस प्रकार मैं पति के विरह से दुखी हुई उसी प्रकार पति भी मेरे लिए दुखी हो गये हे। अब मैं इस राजा की जाल से मुक्त होकर कब उनके दुखी हृदय को दिलासा देने वाली बनूंगी। इसी तरह पुत्र देवदत्त का मुंह भी देखने का विधि ने मेरे भाग्य में निर्माण किया है या नहीं ? मैं कहां कब और कैसे उसका मुंह देख सकूंगी इत्यादि विचार में मग्न हो रही थी।

उसी समय एक दासी उतावली २ आकर कहने लगी—बाई साहब ! इस प्रकार विचारों में क्या डूबी हुई हो तथा आंख में आंसू क्यों आ रहे हैं ? आज तो बड़ा ही प्रसन्नता का समय है। महाराजा साहब की आप पर असीम कृपा है इसलिए उन्होंने आपके लिये बहुत तैयारियाँ कराई हैं। आज आपको सब रानियों में पटरानी बनाकर आपका सम्मान बढावेंगे और आपकी भेंट

करने के लिए आपके इस महलमें पधार रहे हैं। मैं यह सुगन्धित सुगन्ध जल लायी हूँ सो आप उठो और स्नानादि से अपने शरीर को सुशोभित बनाओ। जब मैं नहीं उठी तब बहुत दासियों ने एकत्रित होकर मुझे उठाकी और स्नानादि करा कर लाई हुयेे छीरादि वस्त्राभूषण धारण कराये इतना करके वे वापिस चली गई।

सती विचार करने लगी कि अब मैं क्या करू और कैसे मेरे शील धर्म की रक्षा करू एवं किस प्रकार यहां से छिटक कर मेरे प्राणनाथ से जाकर मिलू ? शिवालयमे वे मेरी राह देखते होंगे। इत्यादि चिन्ताओ मे बैठी हुई थी इतने में सायंकाल हुआ सूर्यदेव से अन्याय नहीं देखा गया इसलिए अस्ताचल की ओर में जा छिपे परन्तु कामी पुरुष उसके बदले कृत्रिम उपायों से काम लेते हैं। तदनुसार राजा के सेवक पुरुषों ने आकर भवन को रोशनी से जगमगायमान कर दिया। कुछ ही समय बाद राजा स्वयं कई प्रकार के विचारों में प्रसन्नता प्रकट करता हुआ सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर महल में आया परन्तु यहां की स्थिति और खासकर मेरी चर्या का निरीक्षण करने को सीढ़ियों पर ही खड़ा रह गया और निरीक्षण करता है तो मेरी पोशाक भव्य एवं आकर्षक होते हुए भी मेरा पहना हुआ कन्चुक अश्रुओं से गीला हो रहा है चेहरा उदास बनरहा है और पर्यंक के नजदीक दिवाल का सहारा लेकर उदास चित्त बैठी हुई मुझे देखकर राजा विचार करता है कि इस दिव्य महल में सब सुख इसके स्वाधीन होते हुए और आज इसे पटरानी का पद देकर इसका सन्मान बढ़ाने को आया हूँ इस हर्ष के प्रसंग में भी यह क्यों झूर रही है और इसे क्या दुख है सो ऊपर जाकर इसे पूछूं। यही विचार कर

वह महल मे आया। सीढियों से पग संचार सुनकर मैं भी चमकी और सोचने लगी कि अबतो मेरे जीवन का अन्तिम समय आ पहुँचा है। अब इस मदनातुर राजा के पजे से छूटने का कोई रास्ता दिखायी नही दे रहा है। अत झरोखे मे से छटककर भूमाता को मेरा शरीर अर्पण करू और पवित्र स्थिति मे ही परलोक की पथिक बनू। मै यह विचार कर रही हू इतने में राजा पलंग पर आकर बैठा और कहने लगा सुघड सुन्दरी, अब तेरी अवधि भी पूर्ण हो चुकी है सो मेरे आधीन होकर पटरानी का पद स्वीकार करलो अन्यथा मे देख लेता हूँ कि तेरा कितना बल है और तू क्या कर सकती है? यह वाक्य सुनकर मै सोच रही थी कि अब राजा मुझे किसी भी तरह पवित्र स्थिति में रहने दे यह सम्भव नहीं इसलिये मेरे शील धर्म की रक्षा के खातिर महल से नीचे छटककर प्राण तज दू इतनी दृढता मेरे में है। परन्तु मेरे पतिदेव शिवालय में मेरी प्रतीक्षा करते होगें उनको आज ही मिलने का आश्वासन दिया है इस लिए एक बार फिर युक्ति से काम लू अन्यथा अन्तिम मार्ग तो ग्रहण करना ही है।

जहा आयुष्य बल शेप होता है वहा काल की दाढ मे गये हुए को भी युक्ति मिल जाती है और वह उसका उपयोग भी कर लेता है।

सती कहती है कि हे लाल! मैं अपने आसूओ को पोछती हुई हर्षित होकर राजा से कहने लगी राज्येश्वर! आपका महल में पधारना ही मेरे भाग्योदय का चिन्ह है परन्तु एक वर्ष पहले मैंने अपने प्रिय पुत्र एव पति को जगल मे छोडे थे वह घटना याद आ जाने से मेरा चित्त व्याकुल बन रहा था। इसलिए मैं आपका

सत्कार नहीं कर सकी इसके लिए क्षमा चाहती हूँ। ऐसा भक्त महन्त, यह ऋद्धि सिद्धि एवं प्रेम प्रमादी रूप पटरानी पद किस स्त्री को न ललचावे ? मैं आपकी हूँ ऐसा मानिये। आपकी आज्ञा को मान देना मेरा कर्तव्य है। इत्यादि स्त्री चरित्र रूपी जाल फैलाना मैंने प्रारम्भ किया।

मेरे मृदु शब्द सुनते ही राजा का हृदय आनन्द विभोर बन गया और विचारने लगा कि अब यह मेरे आधीन होने को सहमत बन गयी है इसलिये मैं भी इसे दिलासा देकर प्रसन्न करूँ। यह सोचकर वह कहने लगा—

हे सुन्दरी ! तुझे यहां लाते समय उस छोटे बच्चे को साथ लाना जरूरी था किन्तु मोहान्ध दशा में मैं भूल गया। साथ नहीं लिया इसका मुझे भी अफसोस है। परन्तु अब क्या हो सकता है ? वह पुत्र उसके पिता को मिल गया होगा वास्ते चिन्ता छोड़ो और इस पलंग पर आकर मेरी मुराद पूर्ण करो। ऐसा कहने के साथ ही वह मेरा हाथ पकड़ने लगा। तुरन्त ही मैं जरा दूर खिसक कर कहने लगी—

वाह ! जी वाह ! इतनी अधीरता ! मैं कहां भग कर जा रही हूँ ? जो आप सचमुच आनन्द लूटने आये हैं तो उस योग्य मादक सामग्री तो यहां कुछ है भी नहीं। जैसे पान, सुपारी सुगन्धी और नशीली चीजें। विलासी स्त्री पुरुषों के समागम में य पदार्थ आवश्यक माने गये हैं। मैं भी आज ऐसी पदार्थ सेना चाहती हूँ इसलिये दो बोतल भी मंगवाइये। यह सुनते ही वे चीजें हाजिर की गई।

राजा इत्र की बाटली (शीशी) का मुह खोलकर मुझ पर छाटने लगा और बोला कैसी महक आती है, तुम्हें पसन्द है ? मैने जवाब दिया इसमें क्या लहेजत है ? सची लहेजत तो इन (नशीली) बाटलियो मे है ऐसा लोग कहते हैं। इसमे क्या खूबी होगा मैं तो नहीं जानती हूँ। राजा ने बाटली खोलकर प्याला भर मेरे सामने धरा। मैंने अपने हाथ मे लेकर आग्रह पूर्वक राजा को पिला दिया और इधर उधर की बाते छेड़कर हसी विनोद मे लगा दिया। इतने मे नशा ने अपना प्रभाव जमाना प्रारम्भ किया। राजा बेभान होने लगा मैंने सोचा कि राजा अभी पूरा पराधीन नहीं बना है अत दूसरी बाटली भी खोलकर उस बेभान दशा मे राजा को पिला दी। नशा का जोर सीमातीत हो जाने से राजा का हार्ट फैल होकर समाधिस्थ बन गया। यह देखकर मैं भी घबरायी और कोई आ जावेगा तो मैं क्या जवाब दूगी तथा मेरी क्या दशा होगी यह विचार कर छटकने का उपाय सोचने लगी परन्तु रोशनी के प्रकाश मे बिजली की सी चमक देती हुई नगी तलवारो के पहरो में से निकल जाना सरल काम नहीं दिखायी दिया। फिर भी मुझे युक्ति सूझ पडी।

मैंने गादी सहित राजा के शव को नीचे लिया और खूटी पर लटकती हुई तलवार से पलग की डोरी निकाल कर उसके दो विभाग किये और महल के पीछे के झरोखे की जाली से बाधकर उसका छेड़ा नीचे डाला तथा उसे पकड कर धीरे २ नीचे उतरी और शहर के बाहर होने को चली। थोडी सी दूर जाने पर राज मार्ग (बाजार) आया वहा रोशनी अधिक थी अत कोई देख लेगा तो मुझे पकडे बिना न रहेगा क्यो कि मेरे वस्त्राभूषण ही मेरे चुगलखोर बन रहे थे। इस भीति से एक दूसरी गली में घुसकर

कर डस लिया। इसते ही वह चमक पडा और अपने पांव से सर्प को दूर किया तुरन्त ही रुधिर की धारा बह चली। शरीर में विष व्याप्त होकर बेभान हो पन्चत्व को प्राप्त हुआ। मैं रात के समय रास्ते में रखडती पड़ती शिवालय में पहुंची उस समय चन्द्रमा का प्रकाश गहरा हो चला था। शिवालय में पतिदेव सोये हुए दिखाई दिये। मैंने आवाज दी कि स्वामिन ! यह समय सोने का नहीं है जागृत होकर रास्ते लगो अन्यथा कहार आ पहुँची तो हमारी क्या दशा होगी अतः निद्रा त्यागो ढील नहीं करो। जवाब न मिलने से दो तीन बार आवाज दी विनति की परन्तु पतिदेव के प्राण पखेरू तो पहले ही शरीर रूपी माला का त्याग कर दूसरी दुनिया के महमान बन चुके थे इसलिये उत्तर दे कौन ? मेरा दिल घबराया और मैं बार २ कहने लगी क्या ऐसे जंगल में इस प्रकार की निद्रा आती होगी अन्त में उनके पास पहुँचकर छूकर प्राण रहित अस्थि पिण्ड देखकर मैं धूज उठी और मूर्छित होकर गिर पड़ी उस समय पास में कोई था नहीं कि संभाल पूछे। कुछ देर पड़ी रहकर पिछली रात के ठण्डे पवन से मूर्छा दूर हुई तब आकाश पाताल एक हो गया हो इस प्रकार मेरी आशाओं पर पानी फिर गया अब मेरे लिए चारों दिशाएं शून्यवत् होगई अब मैं कहां जाऊँ क्या करूं इस प्रकार आक्रन्दन करने लगी परन्तु सुनने वाला वहां था ही कौन ? रात्रि का समय होने से सर्वत्र शान्ति व्याप रही थी रुदन करते २ फिर वहीं भुजंग दिखाई दिया जिसने पति के प्राण लिये थे उसको मूर्ति में लथ पथ देखकर अश्रुधारा बर्षाती हुई मैं विचार करने लगी कि प्रभो कोई भी शरणार्थी जिसकी शरण लेता है वह उसकी रक्षा करता है। परन्तु शंकर देव ने मुझ जैसी दुखिनी की भी दया के खातिर

मेरे स्वामी की रक्षा नहीं की। इसी तरह जिस अम्बिका की मान्यता (बोलमा) करके घर से पुत्र को साथ लेकर हम दोनो पति पत्नी निकले और दर्शनार्थ जा रहे थे उस देवी ने भी मेरा हरण हुआ तब मेरी रक्षा नहीं की इससे यह स्पष्ट तौर से सिद्ध है कि अब मूर्तियो में देव नहीं है देव तो विशुद्ध भावना में है जो सर्वत्र विद्यमान ही है। फिर भी उसे न देखकर अज्ञ जन देवल, मस्जिद, चर्च और पहाडो में ढूंढते हैं यही मिथ्या भ्रमणा है।

प्रकरण १६ वाँ.

जल की चूल में
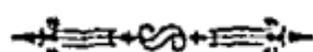
हे पुत्र ! मैंने उस शिवालय में रुदन करते २ हृदय खाली कर डाला परन्तु वहां कोई दिलासा देने वाला नहीं था। तब मैं विचार करने लगी कि पति का शव पड़ा हुआ है इसकी अन्त्येष्टि क्रिया करना भी जरूरी है परन्तु मेरे पास यहां तो कोई साधन नहीं है। शहर यहां से दूर है। शहर में जाकर कहूँ या दाह का सामान लाऊं तो भोर होने से पहले तो मिलता नहीं और भोर होने पर राजा की जो दशा हुई है वह छिपी रहेगी नहीं अवश्य ही मेरी तलाश होगी और मेरी यह पोशाक द्वारा लोगिने मुझे गिरफ्तार कराये बिना रहेंगे नहीं। इसलिये उचित यही है कि इस खटपट में न पड़ते हुए सूर्योदय से पहले ही इस शहर की सीमा से मुझे बाहर हो जाना चाहिये अन्यथा सवार छूट गये और मुझे घेर लेंगे तो मेरी क्या दशा होगी ?

राजा को मारने का मेरा अंश भर भी इरादा नहीं था। न मैंने मारने के इरादे से नशा किया। मेरी भावना केवल बेभान कर के छटकने की थी परन्तु राजा का हार्ट फेल होकर मृत्यु हो

गई यह भी मेरे लिये दुख का विषय है और पति का स्वर्गवास भी असह्य है परन्तु विधि को जो मजूर था वही हुआ। अब उचित यही है कि रात्रि रहते ही मैं यहा से निकल जाऊ और किसी गाव मे जाकर मकान लेकर अपना शेष जीवन भगवद्भजन में लगाऊ मेरे शरीर पर यह जो दाग दागिने हैं इनसे मेरा गुजारा हो जाएगा।

उपरोक्त विचार करके पति के शव को वहीं छोड़कर मैं शिवालय मे बाहर हो गई और जगल का रास्ता लिया। रात का समय और अपरिचित मार्ग होने से रास्ते मे ककर व कटक चुभ रहे थे, पग ऊचे नीचे पड रहे थे जगली जानवरों के भयकर शब्द सुनाई दे रहे थे उनकी परवाह न करके किसी के हाथ न पड जाऊ, किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँच जाऊ यही मेरे हृदय में चाह थी। इससे दरकूच चली जा रही थी। कुछ २ प्रकाश हुआ। उस समय देखती हूँ तो मनुष्यों की आवाज सुनायी दी। मैं चमकी और इधर उधर देखती हुई सावधानी से जा रही थी इतने में आगे एक वृक्ष के नीचे कुछ मनुष्य आपस में बातचीत करते दिखाई दिये। उनके चेहरे पर से वे कोई सभ्य मनुष्य नही किन्तु चोर डाकू जैसे दिखायी देते थे। मैं घबरायी और उनकी नजर चुका कर तिरछी निकल जाने के इरादे से दक्षिण के रास्ते मुड़ी। परन्तु मेरे भाग्य मे से दुख अभी दूर नही हुए थे इससे आगे जाते हुए एक खड्डे में गिर पडी जिसमें कूड़ा कचरा और सूखे पत्ते भरे हुए थे। उसकी आवाज हुई सो उन चोरों ने सुनी। वे भी चमके और उठकर इधर उधर देखने लगे। मैं उस खड्डे में से उठकर निकल रही थी सो उन्होंने देखा।

एक औरत दाग दागिने पहने हुए उस खड्डे में से निकल कर भग रही है। उसके साथ कोई मनुष्य नही है। यह देख कर वे भी मेरे पीछे पड़े और मुझे घेर ली। मैंने उनसे बहुत अनुनय विनय की परन्तु कौन सुने? उन्होंने कहा तेरे सब दाग दागिने उतार दे मैंने एक गले का कीमती दागिना रख कर शेष सब उतार दिये परन्तु वे कब मानने वाले थे? वह भी उतरवा लिया फिर भी मुझे नही छोड़ी। मैंने बहुत दीनता प्रकट करके छोड़ देने को कहा परन्तु वे मेरे रूप में अन्धे हो रहे थे सो कौन माने? मुझे घसीट कर नजदीक में रही हुई झाड़ी तरफ ले गये और मुझ से अपनी लालसा पूरी करनी चाही। मैंने स्पष्ट कह दिया कि प्राण देना मजूर है परन्तु शील भग नहीं होने दूगी। तब वे निराश हुए और सोचा कि इसे किसी शहर में ले जाकर बेच दी जावे। यह तय करके मुझे साथ ले तीन दिन में इस चम्पावती में आये। शहर के बाहर सराय में ठहरे उनमें से दो शहर में आये दो मेरे पास रहे।

शहर में आये हुए दो चोरों ने कुछ नाश्ता लिया और मेरे लिये स्थान ढूंढने लगे। कई यही = हवेलियें देखा परन्तु कहने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। फिरते = इस हवेली के पास आकर खड़े रहे। तब इस हवेली की नायिका ने उन्हें बुलाये और कहा जाओ तुम दरिद्रों के लिये कोई स्थान नहीं है। वे बोले—माँजी हमारे पास एक बहुमूल्य वस्तु है उसे बेचना है जिसके लिये स्थान देख रहे हैं। नायिका ने कहा क्या वस्तु है? उन्होंने कहा एक दिव्य मनोहर अप्सरा को लज्जित करे वैसी स्त्री है। उसने कहा तुम वहां जाकर मुझे दिखाओ। मैं तुम्हें मुंह मांगे दाम दूंगी। वे

तुरन्त सराय में आये और नाश्ता करके मुझे भी नाश्ता करने का कहा। परन्तु मुझे तो यह खाना पीना हराम हो रहा था उनके बहुत कहने पर भी मैंने नहीं खाया। वे मुझे लेकर शहर में आये और नायिका को दिखायी। उसने देखते ही प्रसन्न होकर मेरा मूल्य पूछा। गँवार लोग जितना उनका हौंसला हो उतना ही बतावे। उन्होने सलाह की तो कोई पाच बीसी और कोई सात बीसी कहने लगा अन्त में उन्होंने सात बीसी रूपये लेकर मुझे नायिका को सौंप दी।

मैंने नायिका से पूछा माजी आप कौन जाति हैं? मैं एक ब्राह्मण जाति की बाला हूँ आपद्ग्रस्त हूँ। अपना धर्म निभाना चाहती हूँ आप इसमें सहायक बनोगी? उत्तर मे नायिका ने कहा मुग्धे! हमारी जाति पाति क्या पूछती हो। हमारी सदा सुखी जाति है अखण्ड सौभाग्य सम्पन्ना हैं नित्य नये २ पुरुषो का सेवन करना और संसार का आनन्द लूटना ही हमारा धर्म है। यह सुनते ही मेरे होश उड गये और कुल्हाडी द्वारा छेदी गई लता की भाँति मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पडी। थोडी देर में सुधि आने से आक्रन्द और विलाप करती हुई नायिका से कहने लगी—माजी! मै वेश्या नहीं परन्तु कुलीन कान्ता हूँ। मुझ से आपका कोई स्वार्थ सिद्ध न होगा। मै अपना धर्म (सतीत्व) छोडूंगी नही चाहे प्राण रहे या जॉय। मैं महा दुखी और विधवा हूँ मेरी शेष जिन्दगी प्रभु भक्ति में बिताना चाहती हूँ इसलिये मुझे मुक्त कर दीजिये परन्तु वह कब मानने वाली थी? उसने कहा मैंने तुझे अपने व्यवसाय के लिये खरीदी है। फिर भी तू नफरत करती है तो मैं तुझे ऐसे स्थान में रखूंगी जहां पर कभी कोई राजा महाराजा अमीर उमराव आवें उन्हें रिझाकर धनराशि प्राप्त करना होगा। मैंने बहुत

अनुनय किया कि मुझसे यह कार्य नही होगा। परन्तु वह कब माननेवाली थी? लाचार होकर बिना इच्छा पराधीन हो मुझे यहाँ दाखिल होना पडा। जिसे आज बारह वर्ष हो गये हैं अब तक तो परमात्मा की कृपा से मेरी टेक निभ गयी हैं। और शील धर्म को अखण्ड कायम रख सकी हूँ।

आज तू पाव लाख की फीस भरकर यहा आया सो इस अनिष्ट प्रसग मे भी मैं तेरा दीदार देख पायी हूँ। यद्यपि अवस्था के साथ तेरा रग रूप पलट गया है परन्तु माता पुत्र के सस्कार कायम रहने मे तेरे हाथ का स्पर्श होते ही मेरे स्तनों में दूध उमड़ आया। इसमे मैंने तुझे डेरे पर जाकर पूछताछ करने का कष्ट दिया है।

ससार की विचित्र गति है। प्राणी अज्ञान वश हस हसकर कर्म बाँधता है। उस समय कुछ भी भान नहीं रहता है परन्तु जब वे कर्म उदयावलिका में आकर अपना प्रभाव दिखाते हैं तब मनुष्य सम्यक् विचार न करते हुए निमित्त रूप बने हुए व्यक्तियों को दोष देता है और उन कर्मों को भोगते २ उनसे कई गुने नये कर्म सचित कर लेता है इस तरह ससार की स्थिति बढाये जाता है। परन्तु यह नहीं सोचता कि यह सुख और दुःख मेरे ही पूर्व सचित किये हुये शुभाशुभ कर्म का फल है। जैसा मेरा उपादान वैसा ही निमित्त मिला है। इसमे इस का क्या दोष है इत्यादि विचार कर उदय में आये कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त सुख दुःख

सम्यग् भाव से सद् ले तो आत्मा शीघ्र ही कर्म की परम्परा से छूट जाता है।

सती कहती है कि हे लाल ! इस प्रकार मैं अपने पूर्वो-पार्जित कर्म के अनुसार इस वेश्या गृह में दाखिल हुई हूँ। यह मेरी बीतक वार्ता है।

प्रकरण १७ वां

पाप का प्रायश्चित्त "आत्म हत्या"

माता के मुंह से उपरोक्त कथन सुनकर हंसराज सोचने लगा कि यही मेरी सच्ची जन्मदात्री माता है। वह बहुत लज्जित हुआ और माता के प्रति दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई, विषयाभिलाष से हाथ पकड़ा था उस दुष्कृत्य के लिए उसका हृदय पश्चात्ताप की भट्टी में भुन रहा था। वह आँखों से अश्रुधारा बहाता हुआ पुनः माता के चरणों में गिर पड़ा और बार बार क्षमा मागने लगा। सती उसे उठाकर अपने अंचल से उसके आंसू पोंछती हुई और दिलासा देती हुई कहने लगी हे पुत्र! तेने कोई ऐसा कुकृत्य नहीं किया है केवल अज्ञानता वश प्रार्थना की है।

अज्ञानावस्था में आत्मा कैसे ? कृत्य कर बैठता है इसके लिये श्री जम्बू चरित्र में कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता की कथा अठारह नाता की चली है जिसमें कुबेरदत्त अपनी माता और बहन दोनों के साथ भ्रष्ट हुआ उसका बड़ी खूबी से वर्णन किया है और साध्वी कुबेरदत्ता ने उसे किस प्रकार बोध दिया यह चित्र खड़ा किया गया है। तूने वैसा नहीं किया है। जो अज्ञात अवस्था में किया वह क्षम्य है।

जैन दर्शन में यदि आत्मा से कोई अनुचित कृत्य हो जावे तो उसकी शुद्धि के लिये आलोचना एवं प्रायश्चित्त का विधान है प्रायश्चित्त करने से क्रूर कर्म भी मन्द रस वाले बनकर आत्मा से दूर हो जाते हैं और शीघ्र ही वह आत्मा उन्नत अवस्था प्राप्त कर लेता है यानी साधक दशा से सिद्ध बन जाता है। इस प्रकार माता ने बहुत समझाया परन्तु उसे शान्ति नहीं हुई। अधिकाधिक पश्चात्ताप की भट्टी में उसका हृदय जलने लगा और पाप का पश्चात्ताप करते २ प्रायश्चित्त करते २ अपने पास में रही हुई कटार को हाथ में लेकर सती हाथ पकड़ने लगी इतने में तो अपने हाथ से ही कलेजे में पार कर दी और भूमि पर ढल पडा।

सती यह देखकर हक्की बक्की हो गई और वह भी मूर्च्छित हो भूमि पर ढल पडी। कुछ समय तक बेसुध अवस्था में पड़ी रही। बाद में सुधि आते ही वह बैठी होकर हृदय वेधक रुदन करने लगी। उसका हृदय वेधक रुदन सुनकर छठे मंजिल में रही हुई अनेक सुन्दरियाँ ऊपर आयीं परन्तु युवक की वह गम्भीर स्थिति देखकर तुरन्त नीचे गई और नायिका को खबर दी। नायिका क्रोध से धमधमायमान होती हुई ऊपर आयी। देखती है तो युवक के हृदय में कटार भोंकी हुई है और उसका शव लम्बा चित्त पडा हुआ है। आस पास रक्त के हौज से भर गये हैं। यह त्रास दायक दृश्य देखकर गुस्से से उन्मत्त बनी हुई नायिका उस सती को तिरस्कार पूर्वक कहने लगी—

अय पापात्मा! जुल्म करने वाली चाण्डालिका! तुझे हजार धिक्कार है इस परायी नापण रूप वणजारा के पुत्र को शील कायम रखने के लिये तेने मार डाला। अब मैं उस वणजारे

को क्या जवाब दूगी ? यह कहने के साथ ही उसने लातों के प्रहार एव गालों पर तमाचे लगाना प्रारम्भ कर दिये इससे वह फिर बेसुध होकर भूमि पर गिर पड़ी। कुछ समय निश्चेष्ट रहकर सुध आते ही करुण वदन एव शब्दो में कहने लगी—अय प्राण ! क्यों तू इस खोखे में टिका हुआ है उड़ क्यों नही जाता ? मेरे दुख की तो अब सीमा ही नही रही है अब मुझे जीवित रहकर ही क्या करना है ? पुत्र के साथ तू भी क्यों नहीं चला जाता ? मेरे लिये तो रात पर रात आयी है।

इत्यादि सती के शब्द सुनने से और शव की तरफ देखने से ज्ञात हुआ कि इसने अपने ही हाथ से कटार खायी है। यह जानकर नायिका सती से कहने लगी कि यह क्या बात है और क्या मामला है ? सती अपने हृदय को थामकर कहने लगी-- माजी ! क्या कहूँ मेरा हृदय चिरा जा रहा है। मुझने आज तक पहले आये हुए सब दुख सहन कर लिये गये परन्तु यह दुख सहा नहीं जाता। यह आने वाला पुरुष मेरा ही अगजात पुत्र है। मुझसे दूर हुए तेरह वर्ष हो गये हैं। इसके मिलने की आशा से मैं जीवित रही और मेरे दिन गुजारे हैं परन्तु यह ऐसा कुप्रसग लेकर इस की दुखियारी माता से मिला कि कहा नही जाता। इसने विषय बुद्धि से मेरा हाथ पकडा कि हाथ का स्पर्श होते ही मेरा अग स्फुरा और रोमाच होकर स्तनों में से दूध की धारा छूटी। इससे परस्पर शका पैदा हुई और अधिक वार्तालाप से माता पुत्र का सम्बन्ध प्रकट होते ही मुझे इस नारकी जीवन से छुडाने के बदले उसने अपने ही हाथ से कटार अपनी छाती में भोंक ली। मैं हाथ पकड़ूँ, इतने में तो यह पार हो गई। मेरे लिये

दुख का पहाड फूट पडा। अब मैं भी क्षण भर जीवित नहीं रह सकूँगी। मैं भी इसकी चिता में अपना देह पात करूगी। इस वास्ते इसके रक्षकों को खबर दो सो इसकी क्रिया करे। यह सुनकर नायिका और आस पास की सुन्दरियों ने साश्चर्य खिन्न होकर उसे दिलासा दिया। श्रासू पौंछे। शव को नीचे उतराया और वनजारा को खबर भेजी।

वणजारा, उसकी स्त्री तथा वारद के मनुष्यों ने कल्पान्त करते करते गणिका के भवन में प्रवेश किया और अपने पुत्र की यह स्थिति देखकर वियोग के दुख से पीडित हो बेभान स्थिति में भूमि पर ढल पडे। नायिका आदि ने उसके मरण का कारण बताया। वणजारा पुत्र स्नेह मे मुग्ध हो कहने लगा हे पुत्र! तेने हमे वृद्धावस्था मे दगा दिया। यों न मरते हुए इस बाई की सेवा की होती तो हम सबका कल्याण होता। यह तेरी माता हमारी भी पूज्या बन जाती। इसे यहा से छुड़ाकर इसकी सेवा करते। परन्तु यह विचार पूर्ण कार्य नहीं किया इत्यादि कल्पान्त करते हुए उसके अग्नि सस्कार की तैयारी की गई और उसे रथी में बाध कर ले चले। उस समय वह सती भी साथ २ चली। उसे गणिका ने तथा सभी ने रोकने की बहुत चेष्टा की परन्तु उसने एक न मानी और चम्पावती के बाजार में पछाड खाती हुई जा रही है। शहर के बाहर नदी के किनारे पडाव के नजदीक पहुच कर उसका अग्नि सस्कार करने के लिए चिता रची गई और हसराज के शव को उसमें रखकर अग्नि लगायी कि वह सती चिता मे पडने को चली उस समय फिर विणजारा उसकी स्त्री और अन्य लोग आकर उसको रोक कर समझाने लगे कि कैसा भी मरण

हुआ हो तो मरने वाले के साथ मरा नहीं जाता अत यह दुःसा हस मत कर। हम तुझे अपनी पुत्री समझ कर रखेंगे और हमारे दिल को शान्ति करेंगे। तुम्हारे परिचय में तो यह केवल दो वर्ष ही रहा है परन्तु हमारे परिचय में तो तेरह वर्ष रह कर जवान हुआ है सो हमें क्या दुःख नहीं होगा परन्तु क्या करें? तुम भी धैर्य धरो शान्त होओ इत्यादि बहुत समझायी परन्तु जिसका चित्त आवेगवश आपे से बाहर हो जाता है उसे एक भी बात नहीं रुचती। उसका ज्ञान, विवेक, विचार आदि सब गुण दूर हो जाते हैं। अंत रोकते हुए भी वह चिता में कूद पड़ी।

प्रकरण १८ वाँ

शील का प्रभाव

वन्हिस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात् ।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते ॥
व्यालो माल्यगुणायते गुणनिल पीयूषवर्षायते ।
यस्याऽगेऽखिललोकवल्लभतम शील समुन्मीलति । १॥

भावार्थ—जिसके अग मे सम्पूर्ण लोक मे वल्लभ ऐसा शील रत्न विराजमान है उसे अग्नि भी जल जैसी ठण्डक देती है, समुद्र खानोचिया जैसा हो जाता है, मेरु छोटी सी टेकरी के समान, सिंह हिरण के सदृश, सर्प फूल की माला समान और जहर अमृत बन जाता है। मतलब यह है कि शीलवन्त की प्रकृति भी सहायता करती है, उक्त सब अपना स्वभाव बदल कर उसके अनुकूल बन जाते हैं।

जैसे ही सती चिता में पडी वैसे ही अग्नि ने कुवर के शव को तो भस्म कर दिया परन्तु सती का शरीर और वस्त्र कुछ भी नहीं जले। यह देख कर सती विचार करती है कि मेरे दु खों में

क्या कमी रह गई तो अग्नि ने भी मुझे जलाई नहीं। अब क्या करू और कहा जाऊ ? इतने में तो आकाश में बादल बनकर गाजबीज सहित जोरदार वर्षा होने लगी। जिसमे नदी मे बाढ़ आयी। पानी का जोर इतना बढा कि नदी के किनारे जो चिता जल रही थी उसकी राख भी बह चली। वर्षा का जोर देखकर दाह सस्कार के लिये आये हुए सब लोग तितर वितर हो गये और अपने रास्ते लगे। वणजारा ने भी पानी का प्रकोप देखकर अपना डेरा समेट कर रास्ता लिया।

यह बात वाचकों को आश्चर्य जैसी काल्पनिक मालुम देगी परन्तु विचार करने से ज्ञात होगा कि ऐसा होना आश्चर्योत्पादक नहीं। महासती सीता बीज करने के लिये अग्नि कुण्ड में कूदी थी उस समय वह अग्नि कुण्ड भी वारिकुण्ड बन गया जो आज भी सीता कुण्ड के नाम से मशहूर है।

अथवा देव योग से भी ऐसा बन सकता है क्यो कि हंसराज अकृत्य का पश्चात्ताप करता हुआ शुभ परिणामों से कटार खा कर मरा था, वह देव हुआ हो और उसे अपनी माता को जलाना अभीष्ट न हो। इस तरह का मरण अपघात है मोट वश है इसस गति बिगडती है इसलिये ऐसा करना अस्वाभाविक नहीं है।

सती वहा खडी खडी विचार कर रही थी इतने मे पानी के प्रवाह की टक्कर लगी और वह भी बाढ मे बह चली। आगे जाते हुए उसे होंश आया तब एक लक्कड बह कर जा रहा था उस से चिपक गई और चिपटी हुई चली जा रही थी।

रात भर में कई योजन निकल जाने पर जब प्रातःकाल हुआ सूर्य का प्रकाश फैला तब एक गाव के अहीर लोग नदी का

बहाव और पानी का जोश देखने के लिये नदी के पास खडे थे। उन्होंने देखा कि लकड के सहारे उसमें चिपटा हुआ कोई मनुष्य आ रहा है। कौतुहल वश वे नदी में कूदकर लकड बाहर निकाल लाये उसके सहारे एक स्त्री चिपटी हुई बेहोश अवस्था में थी। उन्होंने उसे औंधी करके कान नाक मुह आदि से पानी निकाला और उसे दवा दी। गरमी आने से वह सचेत होकर बोली मैं कहां आगयी ? यह कौन लोग हैं ? और मुझे नदी में से बाहर क्यो निकाली इत्यादि पूछने लगी। वे लोग बोले तुम्हारे जैसी सुन्दरी हमारे भाग्य से ही आयी है। हम भाग्यशाली हैं। यह कहते हुए आपस में कहने लगे इस सुन्दरी को मैं रखूंगा। दूसरा कहता है इसे तो मैं रखूंगा। यह देख कर सती पुन नदी में गिरने जाती है। वह बोली कि अब इस शरीर को ही रख कर क्या करना ? शरीर की सुन्दरता व सुडौलता ही मेरे लिए दु खदायक बनी है इसलिए इसे नदी को समर्पित करदू। इतने में उस गांव के अहीरों का पटेल आकर उसका हाथ पकड कर कहने लगा— हे बाई ! पुन नदी मे काहे को गिरती हो ?

सती कहने लगी कि मेरे ऊपर तो दुख के पहाड़ फट पडे हैं। मेरे पति और पुत्र दोनो अब नहीं रहे हैं और मेरे शरीर की सुन्दरता से लोगों की बुद्धि बिगडती है इसलिये इसे रखकर भी अब क्या करू ? इसे नदी के हवाले ही क्यों न करू ? जिससे सब झगडा मिटे।

अहीरो के मुखिया ने पास में ही खडे हुए उन अहीर युवकों को फटकारा और सती से कहा—बाई ! तू मेरी धर्म पुत्री होकर रह। मैं तेरा रक्षण एवं पोषण भली भांति करूंगा। अपघात मतकर।

वे अहीर लोग भी अपने पटेल से डरकर सती से कहने लगे कि माफ कर अब हम तुझे नहीं सतावेंगे। हमारी बहन करके तुझे मानेंगे। इससे सती को सन्तोष हुआ और वह उस पटेल के साथ चली। वे सब सती को साथ लेकर गाव में आये गाव की स्त्रियों ने भी सत्कार किया। पटेल ने उसे अपने घर मे रखी।

प्रसगवश सती ने अपनी पूर्व घटना सुनाई। जिसे सुनकर साश्चर्य यह कोई विपद्ग्रस्ता किन्तु पवित्रात्मा सती है यह मान कर पूज्य बुद्धि से सब उसका सत्कार करने लगे। सती भी सबसे हिलमिल कर पटेल के घरेलु कार्य में हाथ बटाने लगी।

इस गाव से नजदीक में ही आये हुए देवपुर मे वहां की स्त्रियाँ नित्य प्रात काल दूध, दही, छाछ आदि लेकर जाती थीं। और उसे बेचकर वापस सायकाल को या जल्दी आ जाती थीं। इनके साथ यह सती भी जाने लगी। एक दिन सब अहीर महिलाए दधि की जावणियाँ लेकर नगर की तरफ चलीं। सती भी आभीरी वेश में साथ थी। जहां रह वहा के रग मे मिलकर रहने से जीवन सुख मयी बन जाता है। कहा भी है "सोई सयाणी अवसर साधे"। कुछ दूर जाने पर उस शहर का राजा अजयपाल अपने कुछ सरदारों को साथ लेकर घोडे पर सवार हो शहर से बाहर निकला था सब से आगे महाराज का घोडा था महाराज के जरीयन साफा तथा गले मे हीरे का कठा था। जिससे कोई दिव्य पुरुष दिखायी देता था। सामने आती हुई आभीरीयों के वेष से घोडा चमका। इससे वे इधर उधर भगी। सो उनकी मटकियां परस्पर टकरा कर फूट गई। नुकसान हो गया। वे

आपस में कहने लगी कि अब क्या होगा ? मेरी सासु बडी तेज है मुझ से लडेगी। कोई कहती है मेरा घर वाला टेढे मिजाज का है वह पीटे बिना न रहेगा इत्यादि कहकर रोने लगी। परन्तु यह सती न रोती है न हो हल्ला ही करती है। यह देख राजा कहने लगा–बहिन ! नुकसान तो तेरा भी हुआ है। तू कैसे चुप है ? वह कहने लगी राजन ! मैं क्या रोऊ ? मै पहले बहुत रो चुकी। मेरी आयु अवशेष थी सो स्मशान की चिता ने भी मुझे न जलाया। मेरे पर तो दुखों के पहाड आ पडे हैं परन्तु वैसे समय में भी मैं अपने शील धर्म की रक्षा कर सकी हूँ। मात्र यही मेरे सन्तोष का विषय है।

राजा ने नीतिज्ञ एवं दयालु होने से उसे धैर्य दिया और कहने लगा आज मेरे अच्छे भाग्य हैं सो प्रात काल तेरे जैसी पवित्रात्मा शील सम्पन्ना सती के दर्शन कर पाया। तू मेरी धर्म बहिन है। तुझे बहिन मानकर अपने यहाँ रखना चाहता हूँ। तेरे सहवास मे मेरा अन्त पुर पवित्र हो जावेगा। अत निर्भय होकर मेरे यहा चल और भगवदभजन कर।

राजा का निमत्रण सुनकर सती को सन्तोप हुआ कि अब मेरे दुख का समय दूर हुआ है। यह कोई धर्मात्मा राजा है। मुझे भी कहीं रहकर शेप जिन्दगी भगवद्भजन मे लगानी है। यह सोचकर वह कहने लगी—राजन ! मैं अपने धर्म पिता अहीरों के मुखिया के यहां पास के गाव मे रहती हूँ। यदि वे आज्ञा दें तो मुझे कोई एतराज नही है। राजा ने कहा मैं उन्हें बुलाकर राजी कर लेता हूँ। तत्काल अहीर लोगो के मुखिया को बुलवाकर राजा न कहा—तुमने इस धैर्य देकर रखा यह अच्छा किया।

अब मैं इसे अपनी धर्म बहिन बना कर रखना चाहता हूं। यदि तुम प्रसन्न होकर सम्मति दो। पटेल ने प्रसन्नता पूर्वक अर्ज की कि राज्येश्वर! हम सब आपकी प्रजा होने से आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करना हमारा धर्म है। राजा ने उसे उचित पुरस्कार के साथ नाजी स्त्रियों को हर्जाना देकर विदा की और सती को सम्मान पूर्वक ले गया।

वहा सती आनन्द पूर्वक रहती है। उसने रानियों तथा राज्य परिवार को सत् शिक्षा देकर भगवद्भजन में अपनी शेष जिन्दगी पूर्ण की और सबका कल्याण किया। इत्यलम।

उपसंहार

कथा, चरित्र और वार्ताएँ हमारे लिए आदर्श (आरिसा) स्वरूप हैं । आरिसा अपने सन्मुख रखकर जिस प्रकार अपने अंग मे, पोषाक मे और शृंगार मे रही हुई विकृतियों (कमियों) को दूर करके उसे सुन्दर शोभनीय एव सुसंस्कारी बनाया जा सकता है उसी प्रकार कथाओं–चरित्रो से अपने जीवन की विकृतियो को दूर कर जीवन को आदर्श सुसंस्कारी एव पवित्र बनाया जा सकता है । चाहिये हृदय की तैयारी ।

उक्त आख्यायिका में हमारे वर्तमान जीवन का साक्षात् चित्र है । भारतीय असंस्कृत एवं अशिक्षित स्त्रियाँ जैन दर्शन की उच्च, तात्विक फिलोसफी को भूलकर स्वल्प भी कष्ट आया कि तुरन्त बिना विचारे मानता—बोलमा कर लेती हैं और उसे पूरी करने के लिये पुरुषो को मजबूर करती हैं । इसका परिणाम क्या आता है कितने घोर कष्टो का शिकार बनना पड़ता है और अपना घर बार छूटकर कैसी बुरी दशा होती है यह इस कथा पर से समझ सकते हैं ।

इस आख्यायिका में अन्य भी अनेक शिक्षाएँ ग्रहण करने योग्य हैं । जैसे कि —

(१) जिस मनुष्य को परस्त्री के त्याग होते हैं और जो सच्चरित्र होता है वह हसराज की तरह कुट्टनिया के जाल में नहीं फसता है।

(२) पूर्व काल मे धन का सचय केवल कुटुम्ब के मुखिया के हाथ रहता था अत किसी को भी रकम की आवश्यक्ता होती तो उस कुटुम्ब के नायक के आगे जाहिर करना पडता और वह उचित समझता तो अपनी सम्मति एव रकम देता इससे कुटुम्ब में सगठन रहता और बडे छोटे की यथा योग्य मान मर्यादा कायम रहती। कुटुम्ब का नायक भी सब पर समान दृष्टि से कुटुम्ब के प्रत्येक मनुष्य के सुख दुख को समझता और उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करता।

(३) माता का ममत्व एव वात्सल्य पुत्र के प्रति होना स्वाभाविक है। और वह अपने पुत्र को कष्ट पाता हुआ नहीं देख सकती परन्तु वर्तमान समय के मनुष्य माता के प्रति कितना सद्भाव रखते हैं यह विचारणीय है। पूर्व काल की भारतीय शिक्षा ऐसी होती थी जिससे घर में सद्भावना एव विनय का शिष्ट व्यवहार होता जिससे दोनों का जीवन सुखी रहता था। परन्तु कुछ अर्द्धदग्ध शिक्षित युवकों ने स्वतत्रता के वातावरण को स्वच्छन्दता में परिणत करके मान मर्यादा तोड दी जिससे घर में शान्ति के बदले घोर अशान्ति और क्लेश मय जीवन बन गया है।

(४) शील धर्म स्त्री एव पुरुषों के लिये समान रूप से आचरणीय होने पर भी वह केवल स्त्रियों के लिये ही रिजर्व कायम कर पुरुष वर्ग ने उसे ठुकरा दिया है और स्वच्छन्दता

पूर्वक अनाचार सेवन करने मे ही अपने पुरुप त्व को सार्थक मान लिया है इसी से स्त्रियों में भी पुनर्विवाह आदि की भावना जागृत होने लगी है। यदि पुरुप अपनी कामेच्छा पर सयम रखना सीखे तो इस ससार को स्वर्ग बनने मे देरी न लगे और विपमता रहने ही न पावे।

(५) प्रत्येक काम मनुष्य को सोच विचार कर करना चाहिये। आवेश मे आकर कोई काम ऐसा नहीं करना चाहिये जिससे अनर्थ पैदा हो। हसराज ने जो आत्मघात किया उससे उसका कोई निस्तार नहीं हुआ। यदि जानते या अजानते अकृत्य हो जावे तो उस पर पश्चात्ताप करके उसकी शुद्धि करना ही पाप से छूटने का सर्वोत्तम उपाय है, आत्मघात करना नहीं।

(६) पदाधिकारी या राजा आदि को मर्यादा का पालन करना व कराना चाहिये परन्तु जहा राजा ही मर्यादा का भग कर देता है वहा परिणाम क्या आता है और व्यभिचारी लोग किस प्रकार कुमौत मारे जाते हैं यह चन्द्रावती के राजा की दुर्घटना पर से समझा जा सकता है।

(७) चाहे कितनी भी आपत्ति आवे तो भी अपना धैर्य न खोना चाहिये परन्तु उससे बचने का उपाय सोचना चाहिये। सोचने मे कोई न कोई युक्ति सूझ आती है जैसे कि कथा की नायिका सती ने युक्ति से काम लिया तो अपने प्राण एव शील बचा सकी। इसी तरह जो आपत्ति के समय अधीर नहीं बनकर चातुरी से काम लेता है वह सफलता प्राप्त कर लेता है। इत्यलम्।

॥ समाप्तम् ॥